अध्याय 6

आलोचक और अविश्वासी

अध्याय 5 जहां विश्वास के बारे में था, वहीं अध्याय 6 को ''अविश्वासियों का अध्याय'' कहा जा सकता है। इस अध्याय में नासरत के लोगों, राजा हेरोदेस और यहां तक कि चेलों को यीशु में विश्वास न करने वाले दिखाया गया है (6:1-6, 14-16, 47-52)।

''क्या यह वही बढ़ई नहीं जो मरियम का पुत्र है?'' (6:1-3)[1]

[1]वहाँ से निकल कर वह अपने देश में आया, और उसके चेले भी उसके पीछे गए। [2]सब्त के दिन वह आराधनालय में उपदेश करने लगा, और बहुत से लोग सुनकर चकित हुए और कहने लगे, ''इस को ये बातें कहाँ से आ गईं? यह कौन सा ज्ञान है जो उसको दिया गया है? कैसे सामर्थ्य के काम इसके हाथों से प्रगट होते हैं? [3]क्या यह वही बढ़ई नहीं, जो मरियम का पुत्र, और याकूब, योसेस, यहूदा, और शमौन का भाई है? क्या उसकी बहिनें यहाँ हमारे बीच में नहीं रहतीं?'' इसलिये उन्होंने उसके विषय में ठोकर खाई।

आयत 1. यीशु **अपने देश** (πατρίς, *patris*) में आया। यह मुख्यतया नासरत के लिए कहा गया लगता है (देखें लूका 4:16)। 1:9, 24 में मरकुस ने इस जगह का नाम दिया। *पेट्रिस* का शाब्दिक अर्थ, ''स्वदेश,'' ''जन्म भूमि,'' या ''वह जगह जहां कोई पला बड़ा हो'' है, परन्तु ''देश'' सही अनुवाद है।

आयतें 2, 3. सब्त के दिन वह आराधनालय में उपदेश करने लगा। लूका 4:16 हमें बताता है कि आराधनालय में जाना यीशु की ''रीति'' थी। अपनी पूरी सार्वजनिक सेवकाई के दौरान लगभग हर सप्ताह वह आराधनालयों में उपदेश देता होगा।

जिन्होंने यीशु को उस दिन सुना **वे चकित हुए और कहने लगे, ''इस को ये बातें कहाँ से आ गईं? यह कौन सा ज्ञान है जो उसको दिया गया है? कैसे सामर्थ्य के काम इसके हाथों से प्रगट होते हैं?''** क्या ऐसा हो सकता है कि जिन्होंने यीशु को सुना वे अपने नगर को ऐसे देखते हों जैसे बाहरी लोग। यानी उनका मानना हो कि नासरत एक बेकार गांव है जिसमें से कभी कोई अच्छी चीज़ नहीं निकली?[2] यदि अपने समाज के बारे में उनका यह विचार था, तो अपने बीच में से अपने से ऊपर किसी को देखकर उन्हें बुरा लगा होगा। लूका 4:28 भी संकेत देता है कि नासरत में इस अवसर पर कुछ लोगों को यीशु से ठोकर लगी। यह इसलिए हुआ हो सकता है कि उसने यशायाह 61:1, 2 की भविष्यद्वाणी को अपने ऊपर लागू किया या उसने समझाया कि यहूदी लोग परमेश्वर की आशिषों के अन्यजातियों से कम योग्य हैं।[3] लूका में उसका दिया उपदेश है, परन्तु मत्ती और मरकुस में नहीं है।

''ज्ञान'' (σοφία, *sophia*) उसमें उसे विशेष तौर पर ''दिया गया'' (δίδωμι, *didōmi*) अलग से दिखता था, परन्तु ''धर्मशास्त्रियों'' तथा और बहुत से लोगों ने देखा कि वह

रब्बियों की किसी पाठशाला से पढ़ा नहीं था। उसके अपने आपको इतना पढ़ा लिखा बनाने की सम्भावना के लिए उसका असाधारण रूप में बुद्धिमान होना आवश्यक था; और वे इस विचार को मानने को तैयार नहीं थे। इसके अलावा उसके अपने रिश्तेदारों के उस पर विश्वास न करने के कारण यह स्पष्ट है कि क्रूस की छाया उन पर पड़ने लगी थी।[4]

उन्होंने कहीं और हुए उसके आश्चर्यकर्मों के बारे में सुना था और पूछ रहे थे, ''**क्या यह वही बढ़ई नहीं?**'' इससे हम यह अनुमान लगाते हैं कि अपनी सेवकाई के आरम्भ होने तक, वह बढ़ई का काम करता था।[5] दूसरी सदी की आरम्भिक परम्परा से पता चलता है कि नासरत के कुछ लोग अभी भी उन हलों और जुओं को दिखाते थे जिन्हें उनके बैलों के लिए यीशु ने बनाया था।[6] उसके लिए ''हल'' (लूका 9:62) ''जुआ'' उठाने (मत्ती 11:29) जैसे खेतीबाड़ी में इस्तेमाल होने वाले शब्दों का इस्तेमाल करना स्वाभाविक था।

6:3 में यीशु के लिए लोगों का अपमान उसे **मरियम का पुत्र** (यूसुफ़ का नहीं) में दिखाया गया हो सकता है। यहूदियों में आदमी को उसके पिता के मर जाने के बहुत बाद तक अपने पिता के पुत्र के रूप में पहचाना जाता था। छोटे नगरों में अफ़वाह को याद करने का एक तरीका है और यीशु नाजायज़ होने के कलंक के साथ ही बड़ा हुआ होगा। जब बालक का जिसे ''यीशु'' कहा गया का जन्म होने वाला था और यूसुफ़ मरियम को अपनी पत्नी बनाकर ले आया (मत्ती 1:24), तो उन्हें रोमी कानून के कारण अपने मूल नगर में कर के लिए नाम लिखवाने के लिए अपने पूर्वज दाऊद के नगर बैतलहम में जाना पड़ा। लूका कहता है कि उस समय उनकी केवल ''मंगनी'' हुई हुई थी (लूका 1:27)।[7] यह उसका और यूसुफ़ का विवाह होने से बहुत पहले की बात है। सम्भवतया जब यह पता चल गया कि मरियम पेट से है, तो यह बात फैल गई, जैसा कि आम तौर पर अफ़वाह में होता है। ऐसी स्थिति में लोग यीशु के लिए कहते होंगे, ''यीशु पर परमेश्वर का श्राप है, और वह कभी कोई अच्छी चीज़ नहीं कर सकता या अच्छा नहीं हो सकता।'' उनके उसे ठुकराने को उनकी ओर से ठेठ यहूदी सोच माना जा सकता है। वे उसकी पैतृक कुल का आदर नहीं करते थे। उन्होंने उसके ''अधिकारी के समान उपदेश'' देने को भी नकारा होगा (1:22) क्योंकि वह उनमें से कइयों के जैसा एक साधारण काम करने वाला था। बाद में, यहूदी अगुओं की तरह, नासरियों ने उसके महान होने के लिए ईर्ष्या रखी, जिस कारण उन्होंने उसका अपमान किया। ये सब बातें यह समझाने के लिए डाली गई हो सकती हैं कि वे उससे ''नाराज़'' क्यों थे या **उन्होंने उसके विषय में ठोकर** क्यों **खाई**। ''ठोकर'' शब्द का अनुवाद σκανδαλίζω (*skandalizō*) से किया गया है और इसका अर्थ ''किसी को ठोकर लगने का कारण'' है।

लोगों ने यीशु को **याकूब, योसेस, यहूदा, और शमौन का भाई** बताया और पूछा, ''**क्या उसकी बहिनें यहाँ हमारे बीच में नहीं रहतीं?**'' मरियम के ''सदा कुंवारी'' विचार के लिए रोमन कैथलिकों को यह दलील देनी पड़ेगी कि यीशु के भाई बहन यूसुफ़ की पिछली पत्नी से सौतेले भाई बहन थे।

> रोम की बेदीन कलीसिया में कुंवारी मरियम की उपासना की बात तभी उठने लगी जब मसीही लेखकों ने यह इनकार करने के कि यह यूसुफ़ और मरियम की संतान थे, कुछ माध्यम निकाल लिए।[8]

''परमेश्वर की माता'' (*मेटर डाई*) की उपाधि मरियम के गीतों और प्रार्थनाओं का इस्तेमाल पांचवीं सदी में कैथोलिक की स्वीकृति से आरम्भ हुआ। उसके लिए यह उपाधि छठी शताब्दी में मास में जोड़ी गई।[9]

कुछ आरम्भिक लेखकों (जैसे टर्टुलियन,[10] लगभग 160–लगभग 220) ने साफ़-साफ़ माना कि यीशु के भाई बहन यूसुफ़ और मरियम दोनों की संतान थे। इब्रानी शैली में कई बार इस्तेमाल होने वाले ''भाई'' और ''बहन'' का अर्थ ''रिश्तेदार'' या ''चचेरा/ममेरा/मौसेरा/फुफेरा भाई/बहन'' होता है परन्तु यह कोई साधारण अर्थ नहीं है। 6:3 में बताए गए लोग यीशु के सौतेले भाई बहन थे।[11]

याकूब हमारे प्रभु का एक भाई था जिसे आरम्भिक कलीसिया में प्रसिद्धि मिली।[12] वह सम्भवतया यहूदियों के लिए ''प्रेरित'' बना, क्योंकि उनका ''प्रेरित'' मसीह (इब्रा. 3:1) इस संसार से कूच कर गया था। कलीसिया निश्चित रूप से यीशु के भाई याकूब को अगुआ मानती थी। 1 कुरिन्थियों 15:7 कुछ अर्थ में उसे प्रेरितों में से एक के रूप में श्रेय देता हुआ लगता है,[13] जिसे किसी विशेष काम के लिए भेजा गया था।

''भविष्यद्वक्ता का अपने देश को छोड़ कहीं और निरादर नहीं होता'' (6:4-6)[14]

[4]यीशु ने उनसे कहा, ''भविष्यद्वक्ता का अपने देश, और अपने कुटुम्ब, और अपने घर को छोड़ और कहीं भी निरादर नहीं होता।'' [5]वह वहाँ कोई सामर्थ्य का काम न कर सका, केवल थोड़े-से बीमारों पर हाथ रखकर उन्हें चंगा किया। [6]और उसे उनके अविश्वास पर आश्चर्य हुआ, और वह चारों ओर के गाँवों में उपदेश करता फिरा।

आयत 4. ''भविष्यद्वक्ता का अपने देश, और अपने कुटुम्ब, और अपने घर को छोड़ और कहीं भी निरादर नहीं होता।'' साफ़ शब्दों में कहें तो, यह आयत कहती है, ''नबी की इज़्ज़त अपने घर में नहीं होती।'' जो लोग यीशु को उसके बचपन से जानते थे वे समझ नहीं पाए, इस कारण उन्होंने उसे ठुकरा दिया। उनके अविश्वास के कारण वह उनके लिए ''ठोकर का पत्थर'' था (देखें यशा. 8:14; रोमियों 9:32, 33)। यहूदी लोग किसी को तब तक आदर के साथ नहीं सुनते थे जब तक वह तीस से अधिक उम्र का न हो, परन्तु यीशु उस उम्र का हो गया था और ये लोग अभी भी उसे अधिकार प्राप्त व्यक्ति के रूप में नहीं देखते थे।

यूसुफ़ के मर जाने के बाद यीशु ने अपनी माता और छोटे भाई बहनों की सहायता करने के लिए बढ़ई का काम किया होगा। नासरत के लोग उसे अच्छी तरह से जानते होंगे। फिर भी उसकी आलोचना उन से बढ़कर कोई नहीं कर सकता था, जो उसे बचपन से जानते थे। दाऊद के परिवार के लोग उसे सबसे छोटा मानते थे जो कि लगभग नाचीज़ के जैसा था; परन्तु शमूएल को दाऊद में वह देखने के लिए कहा गया जो उसके किसी भाई ने या पिता ने नहीं देखा (1 शमूएल 16:6-13)। यूहन्ना ने लिखा, ''वह अपने घर आया और उसके अपनों ने उसे ग्रहण नहीं किया'' (यूहन्ना 1:11)। उन्हें लगा कि वे यीशु को जानते हैं, जबकि वास्तव में वे नहीं जानते थे। फिलिप्स ब्रुक्स ने कहा है, ''पहचान घृणा का कारण बनती है, परन्तु केवल

घिनौने लोगों या वस्तुओं से।''[15] नासरत के लोग इसी श्रेणी में आते हैं। यीशु के लिए उनकी घृणा से यीशु के बजाय उनके बारे में कहीं अधिक पता चलता है। वे कह सकते थे, ''उसके तो अपने भाई और बहने भी उसमें विश्वास नहीं लाते, तो फिर हम क्यों लाएं?'' बहुत से लोग उसके प्रचार से चकित थे, शायद उस अधिकार के कारण जिससे वह बात करता था, उसके आश्चर्यकर्मों और उसके संदेश की बातों से। उस ''ज्ञान'' के जो उसने दिखाया और उस सामर्थ के बावजूद जो उसने आश्चर्यकर्म करके दिखाई, उसके पुराने पारिवारिक मित्रों ने उसके साथ ऐसे व्यवहार किया जैसे वह कोई साधारण व्यक्ति हो।

आयत 5. वह वहाँ कोई सामर्थ्य का काम न कर सका, केवल थोड़े-से बीमारों पर हाथ रखकर उन्हें चंगा किया। यीशु ने उनके बीच कुछ आश्चर्यकर्म किए, परन्तु वहां वह कोई ''सामर्थ का काम'' नहीं कर पाया[16] (ASV; NKJV) यानी वैसा नहीं जैसा उस स्त्री के साथ हुआ जिसने उसका वस्त्र छुआ था और चंगी हो गई थी (5:25-34)। परमेश्वर ने कभी भी किसी भी व्यक्ति के लिए जो आश्चर्यकर्मों के वास्तविक उद्देश्य को देखने को तैयार न हो आश्चर्यकर्म ज़बर्दस्ती नहीं करना चाहा। यही कारण है कि यीशु उनके बीच सामर्थ का कोई काम नहीं कर पाया: ''... उनके अविश्वास के कारण'' (मत्ती 13:58; ASV)।

इस अध्याय में संदेह यीशु के गृहनगर के लोगों की ओर से था। मरकुस शायद अपने पाठकों को दिखाना चाहता था कि 8:27-29 में ''बड़े अंगीकार'' के साथ आपत्तियां भी होनी थीं। सुसमाचार के इस विवरण में मसीहा के रूप में यीशु के ज्ञान के सम्बन्ध में यह एक मोड़ है। यीशु के लिए किसी भी आश्चर्यकर्म को करने के लिए विश्वास का एक माप आवश्यक था; यही कारण है कि उन बहुत से आश्चर्यकर्मों के मुकाबले जो उसने गलील में किए थे, उसने नासरत में बहुत कम आश्चर्यकर्म किए। दु:ख की बात है कि उसके अधिकतर ''आश्चर्यकर्म'' (मूल में, ''सामर्थ के काम''; 6:2) के कारण उन नगरों में जिनमें वे किए गए थे, लोगों की ओर से गम्भीर उलाहना मिला ''क्योंकि उन्होंने मन नहीं फिराया था'' (मत्ती 11:20)। यूहन्ना बपतिस्मा देने वाले और यीशु दोनों ने यकीन दिलाने और पापों पर दु:खी होने और लोगों से मन फिराव करवाने के उद्देश्य से इस इलाके में प्रचार किया था।

यीशु के अपने ही इलाके के लोगों द्वारा उसे ठुकराए जाने से प्रेरित खीज गए होंगे, परन्तु हमें ऐसा कोई संकेत नहीं मिलता कि उसमें उनका विश्वास में गड़बड़ाया हो। चाहे उनका ''अल्प विश्वास'' था (मत्ती 6:30; 8:26; 14:31; 16:8), परन्तु यीशु के पीछे चलते रहकर उसकी आज्ञा मानने के लिए उन्हें अगुआई देने के लिए यह काफ़ी था। अपने पुराने मित्रों के उसमें विश्वास लाने से इनकार करने को देखकर हमारे प्रभु को दु:ख तो हुआ होगा। उनके अविश्वास के कारण उनके प्रति थोड़ी सी दया दिखाई गई और उनके बीच थोड़े से आश्चर्यकर्म हुए। परमेश्वर किसी को भी विश्वास करने के लिए मजबूर नहीं करेगा यानी पवित्र आत्मा किसी के साथ ज़बर्दस्ती नहीं करता।

आयत 6 . अपने गृहनगर के लोगों में मसीहा के रूप में यीशु के बारे में संदेहों से यीशु हैरान हुआ; उसे **आश्चर्य हुआ** कि वे कैसे उसके आश्चर्यकर्मों तथा उपदेश को नकारकर अपने **अविश्वास** में बने रह सकते हैं। केवल यहीं पर हमें हमें बताया गया है कि यीशु कमज़ोर विश्वास से हैरान हुआ। एक और अवसर पर यीशु को एक रोमी सूबेदार के बड़े विश्वास पर

''अचम्भा हुआ'' किया था (मत्ती 8:10; लूका 7:9), जिसके दास को यीशु ने उसके पास गए बिना चंगा कर दिया था (लूका 7:2-10)। यीशु ने उसके लिए कहा, ''मैं तुम से कहता हूं कि मैंने इस्राएल में भी ऐसा विश्वास नहीं पाया'' (लूका 7:9)। हो सकता है कि यीशु के मानवीय मन को समझ पाना हमारी सामर्थ से बाहर है; परन्तु विश्वासियों के लिए इतना जान लेना काफ़ी है कि वह हैरान हो सकता है। वचन ऐसा कोई संकेत नहीं देता कि यीशु इस दौरे के बाद कभी घर वापस गया हो।

कइयों का मानना है कि मसीह को अपने नगर से निकालने के प्रयास के मरकुस के हवाले में इसका कोई उल्लेख नहीं है, इसलिए यह लूका में लिखे जाने के बाद की घटना है, जो नासरत में यीशु की सेवकाई का और विस्तृत विवरण देती है (लूका 4:24-30)। ऐसा लगता नहीं है कि यीशु उस नगर में जिसने इतना नकारात्मक स्वागत किया हो, यहां तक कि से मार डालने की कोशिश की गई, वापस गया हो। परन्तु इस जाने की कई बातें मत्ती और मरकुस की तरह लूका में भी वैसी ही हैं; यानी तीनों में ठुकराए जाने की बात है। यदि यीशु बाद में नासरत में गया हो तो वह अपने गृहनगर के मित्रों के प्रति अपनी बड़ी करुणा और उन्हें एक और अवसर देने की अपनी दयापूर्ण इच्छा के कारण गया होगा। दूसरी बार जाने के विचार की पुष्टि करने के बहुत कम प्रमाण हैं। विलियम हैंड्रिक्सन का मानना था कि मरकुस की यह घटना मत्ती और लूका वाली घटना ही है, दया की एक और पेशकश के साथ दूसरी बार जाने के ठुकराने के ये कारण देते हुए: (क) कहानी की सामान्य रूपरेखा सुसमाचार के तीनों विवरणों में एक ही है (अपने देश के एक आराधनालय में यीशु उपदेश देने के कारण आश्चर्य, आलोचना और ठुकराना हुआ); (ख) यही बात मत्ती 13:57, मरकुस 6:4, और लूका 4:24 में मिलती है; और (ग) ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से कोई समस्या नहीं है क्योंकि लूका 4:23 दिखाता है कि नासरत में मसीह का ठुकराया जाना गलील की उसकी सेवकाई में बाद में हुआ।[17]

यीशु ने वह नियम अपनाया होगा जो हमें गलातियों 6:7 में मिलता है: ''मनुष्य जो कुछ बोता है वही काटेगा।'' मसीह को स्वीकार करने के विरुद्ध हठधर्मिता के मामले में, लोग इस योग्य ही नहीं थे कि उन्हें दूसरा अवसर दिया जाए। नासरत में अपना सामना किए जाने के बाद यीशु गलीलियों में एक और बार जाने लगा, सम्भवतया इन प्रिय लोगों की निराशाजनक स्थिति से दु:खी होकर (मत्ती 9:35-38)।

बारहों को प्रचार करने और आश्चर्यकर्म करने के लिए भेजा गया (6:6-13)[18]

[6]और उसे उनके अविश्वास पर आश्चर्य हुआ, और वह चारों ओर के गाँवों में उपदेश करता फिरा। [7]उसने बारहों को अपने पास बुलाया और उन्हें दो दो करके भेजने लगा; और उन्हें अशुद्ध आत्माओं पर अधिकार दिया। [8]उसने उन्हें आज्ञा दी, ''मार्ग के लिये लाठी छोड़ और कुछ न लो; न तो रोटी, न झोली, न बटुए में पैसे, [9]परन्तु जूतियाँ पहिनो और दो दो कुरते न पहिनो।'' [10]और उसने उनसे कहा, ''जहाँ कहीं तुम किसी घर में उतरो, तो जब तक वहाँ से विदा न हो तब तक उसी घर में ठहरे रहो। [11]जिस स्थान के लोग तुम्हें ग्रहण न करें

और तुम्हारी न सुनें, वहाँ से चलते ही अपने तलवों की धूल झाड़ डालो कि उन पर गवाही हो।'' [12]तब उन्होंने जाकर प्रचार किया कि मन फिराओ, [13]और बहुत सी दुष्टात्माओं को निकाला, और बहुत से बीमारों पर तेल मलकर उन्हें चंगा किया।

आयतें 6, 7. मरकुस 6:6-13 की तरह मत्ती 10:1-23 में **उपदेश** देने जाने और **बारहों** की नियुक्ति को मिलाया गया है, परन्तु मत्ती दोनों के इकट्ठे बाहर जाने को नहीं दिखाता। यह घटनाएं सम्भवतया पहाड़ी उपदेश से थोड़ा पहले की हैं।[19] बाहरों को बाहर भेजना उन्हें आरम्भ में बुलाए जाने के एक या अधिक वर्ष के बाद हुआ। यीशु के अपनी सेवकाई का आरम्भ करने के आधार पर जो 26 या 27 ई. में कहीं हुईं, शायद यह 28 ई. की बात है।

यह यीशु की सेवकाई की अलग बात दिखाता है, विशेषकर गलील में। उसने बारहों को बुलाया, प्रचार के लिए **उन्हें भेजने** से पहले उन्हें प्रेरित कहकर बुलाया।[20] ''भेजने'' के लिए सामान्य शब्द क्रिया रूप ἀποστέλλω (*apostellō*) है। इसे इसके संज्ञा रूप ἀπόστολος (*apostolos*), ''अपोस्टल'' (हिंदी में इसका अनुवाद प्रेरित हुआ है-अनुवादक) शब्द में आसानी से देखा जा सकता है, जिसका सम्बन्ध किसी को जो भेजने वाले का पूरा पूरा प्रतिनिधित्व करता हो, विशेष अधिकार देकर बाहर भेजने से है।[21] प्रेरित अपना खुद का नहीं बल्कि यीशु का काम कर रहे थे, जिसे परमेश्वर ने प्रचार करने के लिए भेजा था और इस कारण वह पिता का ''प्रेरित'' था (इब्रा. 3:1)। यहां पर इन बारहों ने गलील के लिए यीशु के आधिकारिक दूत होना था, और इससे उन्हें पूरे इस्राएल में और अन्त में सारे संसार में जाने के काम के लिए तैयार होने में सहायता मिलनी थी।[22]

प्रेरितों को एक दिन भेजने वाले के लिए बोलने के लिए उसका पूरा-पूरा अधिकार दिया जाना था क्योंकि इसके बाद किसी और ने ऐसा करने के योग्य नहीं हो पाना था। (प्रेरितों 2 में पिन्तेकुस्त के दिन यह होना था।) राज्य की सफलता में इन बारहों का बड़ा महत्व होना था, इसलिए यीशु ने उन्हें चुनने से पहले पूरी रात प्रार्थना में बिताई (लूका 6:12-16)। उन ''बारह'' की संख्या इस्राएल के बारह गोत्रों का स्मरण कराती है।

प्रेरिताई की भूमिका के साथ मिली नई शक्ति **अशुद्ध आत्माओं पर अधिकार** था। मत्ती 10:1 इसमें जोड़ता है, ''... और सब प्रकार की बीमारों और सब प्रकार की निर्बलताओं को दूर करें।'' मत्ती 10:8 में है, ''बीमारों को चंगा करो, मरे हुओं को जिलाओ, कोढ़ियों को शुद्ध करो, दुष्टात्माओं को निकालो। तुमने सेंतमेंत पाया है, सेंतमेंत दो।'' प्रेरितों को थोड़ी देर के लिए वह सामर्थ दी गई जिसे किसी भी साधारण व्यक्ति के पास होने की संसार कल्पना भी नहीं कर सकता।

इन चुने हुओं के लिए वह करने का जिसके लिए उन्हें प्रशिक्षित किया गया था समय आ चुका था। वे प्रचार करना आरम्भ करने के लिए तैयार थे। यीशु ने उन्हें गलील में उनके अपने लोगों के बीच भेजा। मिशन कार्य आरम्भ करने का सबसे बढ़िया तरीका उन लोगों, उनके रीति रिवाज़ों और उनके बोलचाल से आरम्भ करना है जिन्हें आप जानते हैं। प्रचार करना सीखने का सबसे बढ़िया तरीका, प्रचार करना है। बाद में पवित्र आत्मा की अगुआई से उन्होंने और बहुत कुछ करने के लिए तैयार हो जाना था (प्रेरितों 1:5-8; 2:1-4)। **दो दो करके** भेजे होने के

कारण वे एक-दूसरे को प्रोत्साहित कर सकते थे और एक-दूसरे का साथ दे सकते थे, जो कि बहुत से न मानने वाले लोगों में प्रचार करने के अकेले में बड़ी सहायता होनी थी।

मत्ती 10:2-4 में प्रेरितों के नाम जोड़ों में दिए गए हैं, जो कि साफ़ तौर पर हमसफर होने का संकेत है। अलग-अलग व्यक्तित्व मिलकर काम करने पर एक-दूसरे के सहायक हो सकते हैं। प्रचार करने या सिखाने को छोड़ अकेले करने पर, शायद कुछ ही गतिविधियां हैं जो अकेले रहने देती हों।[23] मसीह में कच्चे व्यक्ति को कभी अकेले नहीं भेजा जाना चाहिए और परिपक्व के लिए भी साथी सहायक होता है। पौलुस के पास आम तौर पर प्रशिक्षण पाने या सुधार के लिए कोई न कोई उसके साथ होता था। इसके अलावा यहूदी श्रोताओं के लिए दो गवाहों की गवाही अधिक विश्वसनीय और अधिक स्वीकार्य होनी थी।[24]

आयतें 8, 9. प्रेरितों को **मार्ग के लिए** साथ **और कुछ न** लेना था।[25] जंगली जानवरों से से बचाव या चलने में सहायता के लिए **लाठी** काफ़ी होनी थी। सफ़र में खाने पीने के लिए कुछ न लेने का अर्थ था कि उनकी सहायता उनके लोगों द्वारा की जानी थी, ''क्योंकि मज़दूर को उसका भोजन मिलना चाहिए'' (मत्ती 10:10; ASV)। यानी काम करने वाला अपनी सहायता किए जाने का हक्कदार है। सुसमाचार सुनाने से जीविका कमाना बाइबल का सामान्य नियम है जो प्रचारक को लोगों के निकट रखता है और उसे थोड़ा बहुत उन पर निर्भर बना देता है (देखें 1 कुरि. 9:14)। KJV में कहा गया है कि यीशु द्वारा भेजे हुओं में ''न झोली'' लेनी थी (मरकुस 6:8), जो कि भोजन की थैली थी; परन्तु यह शब्द ''चंदे की थैली'' के लिए भी इस्तेमाल किया जाता था। ऐसी थैली का इस्तेमाल चरवाहों द्वारा भोजन ले जाने के लिए एक प्रकार के थैले के रूप में किया जाता था।[26] आराधनालयों में ''सेवक'' हुआ करते थे जो निर्धनों के लिए भोजन मांगने के लिए लोगों के पास जाते थे।

प्रेरितों को बताया गया **न तो रोटी, न झोली, न बटुए में पैसे** लो। आम तौर पर वे आवश्यकता की चीज़ें खरीदने के लिए पैसे रखा करते थे (देखें यूहन्ना 13:29)। उन्होंने ऐसा करना था जब उन्हें सारे संसार में भेजा जाना था (लूका 22:35, 36)।[27] बाद में प्रेरितों को ऐसे थैले की आवश्यकता पड़नी थी, परन्तु इस मिशन ट्रिप पर नहीं। सम्भवतया यह गर्मियों के अंत या सर्दी के आरम्भ की बात है, और थोड़ी दूर बाहर जाने के लिए छोटा थैला आवश्यक होना था। उन्हें यह भी बताया गया था कि ''**जूतियाँ पहिनो और दो दो कुरते न पहिनो।**'' उन्हें आवश्यक जूतों के लिए भी मसीह के अनुयायियों पर निर्भर होना सीखना था। ''जूतियां'' इस बात का संकेत भी हो सकता है कि दो-दो की इन टोलियों ने गर्मियों का छोटा दौरा करना था।

आयत 10. ''जहाँ कहीं तुम किसी घर में उतरो, तो जब तक वहाँ से विदा न हो तब तक उसी घर में ठहरे रहो।'' यीशु द्वारा ठहराए गए नियम उसके प्रेरितों को अपने भाइयों के बजाय परमेश्वर पर अधिक निर्भर रहना सिखाने के लिए हो सकते हैं। परन्तु उनमें यह भी संकेत हो सकता है कि ये प्रचारक उन लोगों पर भरोसा करना सीखें जिन्होंने उनके प्रचार पर विश्वास करना था। उन्हें उसी घर में रुकना था जिसमें उन्हें पहले बुलाया हो, मेज़बान चाहे अमीर हो या गरीब और चाहे वहां सुख सुविधा हो या बुरे हालात। उन्हें पर्याप्त चीज़ें मिलनी थीं, परन्तु विश्वास रखने वाले भरोसे के लिए आवश्यक चीज़ों से बढ़कर नहीं। इस सिस्टम में सुसमाचार के असली प्रचारकों को जिन्हें किसी भी प्रकार की आवश्यकता होती आतिथ्यसत्कार करने की

मसीही ज़िम्मेदारी का संकेत था।

आयत 11. सुसमाचार सुनाने वाले एक जगह में कितनी देर तक रह सकते थे यह उनके किए जाने वाले स्वागत पर निर्भर होना था। यदि लोग उनकी न सुनते तो उन्हें **अपने तलवों की धूल झाड़**नी थी ता**कि उन पर गवाही हो**। धूल क्यों झाड़नी थी? मूर्तिपूजक देशों की धूल को अपवित्र माना जाता था। अपने देश से बाहर से घूमकर आने वाले यहूदियों ने घर वापस आने पर अपने पांव झाड़ लेने की प्रथा बना ली थी, जिससे वे पवित्र देश या इसके मन्दिर को मूर्तिपूजक देशों की मिट्टी से दूषित न करें।[28] सुसमाचार को ठुकराने वाले यहूदियों के साथ मूर्तिपूजकों जैसा व्यवहार किया जाना था। धूल झाड़ने का काम एक प्रतीक था कि प्रचारकों ने नगर को चिताया था और वे इसे मिलने वाले दण्ड से बरी थे।

यहेजकेल 3:16-21 में इसके साथ मिलती जुलती ताड़ना दी जहां नबी ने घोषणा की कि यदि किसी को सच्चाई बता भी दी गई हो, परन्तु उसने इसे ठुकरा दिया हो तो सुनाने वाले की ज़िम्मेदारी नहीं रही। नबी को सच्चाई बताने के लिए जिम्मेदार ठहराया गया था, परन्तु यदि सुनने वाला नबी की बात को मानने से इनकार कर दे तो उसे मिलने वाले दण्ड की जिम्मेदारी उसी की होनी थी।

धूल झाड़ने की सांकेतिक क्रिया ''गवाही'' (या ''साक्षी''; μαρτύριον, *marturion*) थी कि सुनने वाले अब प्राणों के लिए पूरी तरह से ज़िम्मेदार थे। पिसिदिया के अंताकिया में पौलुस और बरनबास ने यही किया (प्रेरितों 13:51)। बहुत से लोगों के सुसमाचार की चेतावनी को नकारने और परमेश्वर की निंदा करने पर पौलुस ने अपने कपड़े फाड़ दिए (प्रेरितों 18:6)। उसने कहा, ''तुम्हारा लहू तुम्हारी ही गर्दन पर रहे।'' इसके बाद वह यहूदियों के पास से निकलकर अन्यजातियों के पास चला गया, उनके बीच मज़बूत मण्डली तैयार की।

आयत 12. तब उन्होंने जाकर प्रचार किया कि मन फिराओ [μετανοέω, *metanoeō*]। मन फिराव का संदेश वही संदेश था जिसका प्रचार यूहन्ना और यीशु ने किया था। मन फिराव जीवन की पूरी दिशा को क्रांतिकारी रूप से बदलना है। यह केवल डकैती, हत्या, व्यभिचार और ऐसे काम छोड़ना नहीं है जिन्हें गम्भीर पाप माना जाता है। इसका अर्थ आत्मकेन्द्रित जीवन से परमेश्वर केन्द्रित जीवन में बदलना यानी वह बदलाव है जो कष्ट देता है (जब तक पश्चात्तापी व्यक्ति समय बीतने पर अपने मन फिराव के फलों को देखकर उन पर आनन्दित न हो)।

आयत 13. यीशु के प्रेरितों ने प्रचार करते हुए बहुत सी **दुष्टात्माओं को निकाला** और उस सामर्थ से जो यीशु ने उन्हें दी थी बीमारों को **चंगा किया** दुष्टात्माओं पर सामर्थ दिखाने के लिए उन्हें कितना आत्मविश्वास मिला होगा। सत्तर जनों ने बाद में ऐसी ही शक्तियां होने पर आनन्दित होना था (लूका 10:17-20)। परन्तु यीशु ने उत्तर दिया कि उन्हें इस बात से अधिक आनन्दित होना चाहिए कि उनके नाम ''स्वर्ग पर लिखे'' गए। आश्चर्यकर्म करना उतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना उद्धार पाना और स्वर्ग में जाना।

तेल मलना सदियों पुरानी सामान्य परम्परा थी। जोसेफ़स ने कहा कि जब हेरोदेस बीमार पड़ गया तो उसे ''तेल से भरे बर्तन में नहलाया'' गया जिससे उसे लाभ मिला।[29] मसीह के अनुयायियों के लिए नये नियम में इस प्रथा का उल्लेख केवल यहीं और याकूब 5:14 में है।

प्रेरितों के लिए तेल मलना परमेश्वर की सामर्थ से किसी आश्चर्यकर्म से होने पर चंगाई का बाहरी प्रतीक था। इसे प्रार्थना के साथ आवश्यक नहीं माना जा सकता, क्योंकि यीशु ने कभी इसका इस्तेमाल नहीं किया। मरकुस 7:33 और 8:23 में उसने थूक का इस्तेमाल किया। यदि तेल का इस्तेमाल दवाई के रूप में किया जाता हो, तो अंदरूनी बीमारियों के लिए इसका क्या काम होना था?

मूर्तिपूजकों के साथ-साथ यहूदियों में तेल का इस्तेमाल इतना अधिक किया जाता था कि इसे यह संकेत के लिए लगाया जा सकता होगा कि कोई विशेष प्रकार की चंगाई होने वाली है। अंधों और बहरों के लिए यह एक महत्वपूर्ण कार्यवाही होती होगी। ''हर्ष का तेल'' (देखें भजन 45:7) ईश्वरीय आशिषों की प्रतिज्ञा किए जाने पर आनन्द करने के चिह्न के रूप में लगाया जाता है, जिससे व्यक्ति स्वाभाविक रूप में तैयार होकर जश्न मनाता है। उस अर्थ में तेल लगाना सजावटी था। याकूब 5:14 वाली चंगाई इतनी पक्की थी कि आनन्द करने का चिह्न प्रार्थना के साथ सही हो सकता था। बेशक आज कोई भी यह नहीं कह सकता कि तेल मलने के साथ की गई प्रार्थना से चंगाई सुनिश्चित होगी।

पूरी बाइबल में कई उद्देश्यों के लिए तेल (आम तौर पर जैतून का तेल) इस्तेमाल किया जाता था: औपचारिक (निर्गमन 25:6), सौंदर्य या साफ़ सफाई के लिए (रूत 3:3; लूका 7:46), घी के स्थान पर भोजन के रूप में (गिनती 11:8; व्यव. 7:13; नीति. 21:17), रौशनी के लिए दीए में डालने के लिए ईंधन के रूप में (निर्गमन 25:6; 27:20; मत्ती 25:3, 4)। आम तौर पर या शायद भेंटों के साथ तेल का इस्तेमाल किया जाता है (यहेज. 45:14, 24; 46:4-7, 11, 14, 15)। किसी व्यक्ति (याजक, नबी या राजा; 21:10-12; भजन 89:20 को पद पर बिठाने के समय मिले ईश्वरीय अनुग्रह या दी गई शक्ति का प्रतीक होता था)। तेल से अभिषेक किया जाना दफ़नाने के सम्बन्ध में भी होता था (मरकुस 14:3-9; यूहन्ना 12:3-8), और लूका 10:34 में इसे शारीरिक उपचार के रूप में दिखाया गया है। सिपाहियों द्वारा चमड़े को सूखने और मुड़ने से बचाने के लिए अपने कवचों पर लगाया जाता था।[30] तेल कई बार पवित्र आत्मा के प्रतीक का काम भी करता होगा, जिसमें अभिषेक किया जाना ईश्वरीय चंगाई का ''नाटकीय दृष्टांत'' होता होगा।[31]

प्रेरितों के लिए यह सीखना आवश्यक था कि यीशु में विश्वास तब तक किसी काम का नहीं होना था जब तक व्यक्ति नये नियम में बताए अनुसार ''सुसमाचार का प्रचार'' दूसरों को नहीं सुनाता।[32] दूसरों को पवित्र शास्त्र की स्पष्ट सच्चाइयां सिखाने के लिए तैयार होने का वास्तविक काम हमारा सबसे बड़ा आनन्द होना चाहिए (देखें मत्ती 5:16; कुल. 4:6; 1 पतरस 3:15)। हम अपने विश्वास को सार्वजनिक चर्चा के क्षेत्र में परखे जाने के लिए बहुत कम डालते हैं। और मसीहियों को हर उपलब्ध साधन से विश्वास की रक्षा करने के लिए तैयार और योग्य होना चाहिए (यहूदा 3)।

हेरोदेस का मसीह को जी उठा यूहन्ना मान लेना (6:14-20)[33]

[14]हेरोदेस राजा ने भी उसकी चर्चा सुनी, क्योंकि उसका नाम फैल गया था, और उसने

कहा, ''यूहन्ना बपतिस्मा देनेवाला मरे हुओं में से जी उठा है, इसी लिये उससे ये सामर्थ्य के काम प्रगट होते हैं।'' 15अन्य लोगों ने कहा, ''यह एलिय्याह है।'' परन्तु कुछ अन्य ने कहा, ''भविष्यद्वक्ता या भविष्यद्वक्ताओं में से किसी एक के समान है।'' 16हेरोदेस ने यह सुन कर कहा, ''जिस यूहन्ना का सिर मैं ने कटवाया था, वही जी उठा है!'' 17हेरोदेस ने अपने भाई फिलिप्पुस की पत्नी हेरोदियास के कारण, जिससे उसने विवाह कर लिया था, लोगों को भेजकर यूहन्ना को पकड़वाकर बन्दीगृह में डाल दिया था; 18क्योंकि यूहन्ना ने हेरोदेस से कहा था, ''अपने भाई की पत्नी को रखना तुझे उचित नहीं।'' 19इसलिये हेरोदियास उससे बैर रखती थी और यह चाहती थी कि उसे मरवा डाले; परन्तु ऐसा न हो सका, 20क्योंकि हेरोदेस यूहन्ना को धर्मी और पवित्र पुरुष जानकर उससे डरता था, और उसे बचाए रखता था, और उसकी बातें सुनकर बहुत घबराता था, पर आनन्द से सुनता था।

6:14-29 वाला भाग यह दिखाते हुए कि यीशु के बड़े अग्रदूत यूहन्ना की मृत्यु कैसे हुई, बीच में एक समृति है।[34]

आयतें 14, 15. महल में भी **हेरोदेस राजा** (अंतिपास)[35] ने यीशु की **चर्चा सुनी** थी, **क्योंकि उसका नाम फैल गया था**। नये नबी की बात हर कोई कर रहा होगा।

इस हेरोदेस ने राजा की उपाधि की मांग की होगी; परन्तु तकनीकी तौर पर रोमी लोगों ने उसे ''टैट्रार्क'' या ''चौथाई का हाकिम'' बताया, क्योंकि उसे अपने पिता के शासन के केवल एक चौथाई भाग पर अधिकार था।[36] वह अपने पिता को मिले हेरोदेस महान की उपाधी लेना चाहता था, परन्तु रोमियों ने उसे ''राजा'' की उपाधि देने से मना कर दिया।[37] 39 ई. में उसे रोम में बुलाया गया, उस पर देशद्रोह का मुकद्दमा चला (उसके भतीजे हेरोदेस अग्रिप्पा प्रथम द्वारा आरोप लगाया जाने के कारण) और दोषी ठहराया गया। यीशु के बचपन के दौरान, इस हेरोदेस का शासन, नासरत से तीन मील दूर यूनानी कस्बे सिफोरिस से था। यूहन्ना के समय तक वह गलील के तट पर तिब्रियास में एक महल में रह रहा था।

हेरोदेस अंतिपास वही हेरोदेस है जो सुसमाचार के विवरणों में[38] शैशवकाल के विवरणों को छोड़, जहां इसका अर्थ उसके पिता हेरोदेस प्रथम (या ''हेरोदेस महान'') के लिए है हर जगह मिलता है। इस वचन में हेरोदेस ने यीशु और उसके बड़े कामों के बारे में सुना था, इसलिए वह कोई चमत्कार देखना चाह रहा था। बाद में यीशु की सुनवाइयों के समय उसके साथ निजी बातचीत के दौरान उसने उसे केवल उसके लिए कोई चमत्कार करने को कहा (लूका 23:8)। यह जानते हुए कि हेरोदेस की इच्छा केवल सनसनी की लालसा से है, यीशु ने हाकिम की किसी बात को नहीं माना बल्कि उससे बात करने से भी मना कर दिया। हेरोदेस का जवाब अपने सिपाहियों को यीशु को यातना देने और ठट्ठे उड़ाने की अनुमति देकर दिया गया (लूका 23:11)।

और उसने कहा, ''यूहन्ना बपतिस्मा देनेवाला मरे हुओं में से जी उठा है, इसी लिये उससे ये सामर्थ्य के काम प्रगट होते हैं।'' यीशु ने घोषणा की थी कि यूहन्ना वही ''एलिय्याह'' था जिसकी भविष्यद्वाणी मलाकी 4:5, 6 और लूका 1:13 में की गई थी,[39] परन्तु कइयों का मानना था कि यीशु ही यह **एलिय्याह** या **भविष्यद्वक्ताओं में से** कोई था। यहूदी लोग (हेरोदेस सहित) निश्चय ही मूसा की उस भविष्यद्वाणी को जानते थे जिसमें उसने कहा था कि किसी दूसरे नबी ने

उसकी जगह लेनी थी (व्यव. 18:18)। लूका 1:17 में यीशु ने समझाया कि यूहन्ना ''एलिय्याह की आत्मा और सामर्थ में'' आ रहा था न कि पुराने नियम के नबी के अवतार के रूप में, जैसा कि बहुत से यहूदियों को उम्मीद थी (देखें मत्ती 11:14; मरकुस 9:13)।

आयत 16. हेरोदेस ने यह सुन कर कहा, ''जिस यूहन्ना का सिर मैं ने कटवाया था, वही जी उठा है!'' स्पष्टतया हेरोदेस का विवेक उसे चैन से नहीं बैठने दे रहा था। यीशु के बारे में दूसरे लोग चाहे जो भी सोच रहे हों, परन्तु हेरोदेस को यही विचार सता रहा था कि वह वास्तव में मुर्दों में से जी उठा यूहन्ना बपतिस्मा देने वाला है। यूहन्ना के प्रचार को बड़ी संख्या में लोगों ने माना। यहूदियों ने तीन से अधिक सदियों से परमेश्वर की आवाज को नहीं सुना था और वे यूहन्ना के शब्दों में इसे फिर से सुनने को उतावले थे। हेरोदेस ने यूहन्ना को जेल में डालकर और उसका सिर कलम करके उसकी जीवन लीला और सेवकाई खत्म कर दी थी।

आयतें 17, 18. हेरोदेस ने अपने भाई फिलिप्पुस की पत्नी हेरोदियास के कारण, जिससे उसने विवाह कर लिया था, लोगों को भेजकर यूहन्ना को पकड़वाकर बन्दीगृह में डाल दिया था; क्योंकि यूहन्ना ने हेरोदेस से कहा था, ''अपने भाई की पत्नी को रखना तुझे उचित नहीं।'' हेरोदियास के साथ हेरोदेस के व्यभिचारपूर्ण सम्बन्ध के लिए उसे दोषी ठहराने का साहस सच्चे नबी ने दिखाया था। हेरोदेस ने हेरोदियास को रोम में अपने ही सौतेले भाई फिलिप्प को छोड़कर अपनी रानी बनाने के लिए फुसलाया था। हेरोदियास अंतिपास के भाई अरिस्तोबलुस की पुत्री थी और इस प्रकार से वह हेरोदेस की भतीजी थी; परन्तु उस समय ऐसे विवाहों पर कोई इतना ध्यान नहीं देता था। इसके अलावा जिनका विवाह किया था वे ''राजसी परिवार'' में से थे। परन्तु इसमें और भी बड़ी बात थी। हेरोदियास का विवाह अंतिपास के भाई हेरोदेस फिलिप प्रथम से हुआ था,[40] और उसने उसकी बेटी को जन्म दिया था। जोसेफ़स ने उसका नाम ''सलोमी'' लिखा है।[41]

यहूदियों के लिए मरे हुए भाई की पत्नी के साथ विवाह करना जायज़ था। विधवा भाभी के साथ विवाह (इसके लिए अंग्रेज़ी शब्द ''levirate'' के लिए ''देवर'' का लातीनी शब्द *levir*) का नियम व्यवस्थाविवरण 25:5-10 में बताया गया है। इसमें मृत व्यक्ति के नाम में संतान उत्पत्ति के लिए भाई की विधवा से विवाह करने के लिए नियम है। परन्तु भाई के जीते जी उसकी पत्नी से सम्बन्ध बनाना व्यभिचार से भी बुरा था और पुराने नियम में सगे सम्बन्धियों के साथ व्यभिचार के रूप में इसकी पूरी निंदा की गई (लैव्य. 18:6, 16; 20:21)। इसके अलावा, हेरोदियास हेरोदेस की भतीजी थी जिस कारण उनके सम्बन्ध को आज के खुले आधुनिक मानकों से भी सगे सम्बन्धियों के साथ व्यभिचार माना जाना आवश्यक है।

आयतें 19, 20. इसलिये हेरोदियास [यूहन्ना] **से बैर रखती थी और यह चाहती थी कि उसे मरवा डाले; परन्तु ऐसा न हो सका।** हेरोदियास के सहमत होकर फिलिप को छोड़ने और इस्राएल में जाने से पहले, हेरोदेस को रोम से लौटकर अपनी पत्नी फलेलिस को तलाक देना आवश्यक था, जो अरब के राजा अरितास चतुर्थ की पुत्री थी। उसकी पत्नी को हेरोदेस के घर लौटने से पहले ही उसकी इस हरकत का पता चल गया था और वह अपने पिता के देश में भाग गई थी। इस कारण अरितास ने हेरोदेस पर हमला करके उसे पराजित कर दिया, उसकी सारी सेना को नष्ट कर दिया और केवल रोम के हस्तक्षेप के कारण हेरोदेस की जान बख्श दी।[42]

किसी प्रचारक द्वारा सार्वजनिक रूप में डांटे जाने की यह पराजय हेरोदेस के लिए काफ़ी नीचा दिखाने वाली थी। वह इतना यहूदी तो था जो नबियों में विश्वास करता हो और यूहन्ना का आदर करता हो।

यूहन्ना को लगा हो सकता है कि यदि वह इस हाकिम से मन नहीं फिरवाता तो वह यीशु के आने के लिए यहूदी कौम को पूरी तरह से तैयार नहीं कर सकता। हेरोदेस को इस बात का श्रेय जाता है कि वह यूहन्ना की **बातें आनन्द से सुनता था**, शायद उसे आदर देने के लिए, परन्तु **उसकी बातें सुनकर बहुत घबराता था**। शायद यूहन्ना के अनोखे स्वभाव के कारण हेरोदेस के मन में इस प्रचारक को सुनने की इच्छा हुई, चाहे उसने कई बार हेरोदेस के नाजायज़ विवाह को गलत बताया था। फिर भी वह इतना कमज़ोर था कि यूहन्ना के प्रचार को बंद करवाने के प्रयास में उसे जेल में नहीं डाल पाया। यूहन्ना ने सम्भवतया हेरोदेस की दुष्टता बताते हुए जब भी अवसर मिला यहूदिया में प्रचार किया। हेरोदेस यूहन्ना का प्रशंसक था, परन्तु उन लोगों से जो उसे नबी मानते थे डरता था।[43] वह यूहन्ना को ''आनन्द से सुनता'' था, एक पहेली सा लगता है, परन्तु वह अवश्य यह मानता होगा कि वह ''परमेश्वर के वास्तविक जन'' के सामने है।[44] इसके विपरीत हेरोदियास यूहन्ना से घृणा करती थी और उसके मन में उसके विरुद्ध इतनी ईर्ष्या थी कि वह उसे अपने हाथों से मार डालती, परन्तु वह उसे मार नहीं पाई। **हेरोदेस यूहन्ना से डरता था**, जो इस बात को दिखाता है कि उसका परमेश्वर में इतना विश्वास था और जिससे उसके विवेक में परेशान करने वाली नैतिकता की समझ थी। इस कारण वह **उसे बचाए रखता था**।

यूहन्ना की मृत्यु का दृश्य (6:21-29)[45]

[21]ठीक अवसर आया जब हेरोदेस ने अपने जन्म दिन में अपने प्रधानों, और सेनापतियों, और गलील के बड़े लोगों के लिये भोज किया। [22]तो हेरोदियास की बेटी भीतर आई, और नाचकर हेरोदेस को और उसके साथ बैठनेवालों को प्रसन्न किया। तब राजा ने लड़की से कहा, ''तू जो चाहे मुझ से माँग मैं तुझे दूँगा।'' [23]और उससे शपथ खाई, ''मैं अपने आधे राज्य तक जो कुछ तू मुझ से माँगेगी मैं तुझे दूँगा।'' [24]उसने बाहर जाकर अपनी माता से पूछा, ''मैं क्या माँगूँ?'' वह बोली, ''यूहन्ना बपतिस्मा देनेवाले का सिर।'' [25]वह तुरन्त राजा के पास भीतर आई और उससे विनती की, ''मैं चाहती हूँ कि तू अभी यूहन्ना बपतिस्मा देनेवाले का सिर एक थाल में मुझे मँगवा दे।'' [26]तब राजा बहुत उदास हुआ, परन्तु अपनी शपथ के कारण और साथ बैठनेवालों के कारण उसे टालना न चाहा। [27]अतः राजा ने तुरन्त एक सिपाही को आज्ञा देकर भेजा कि उसका सिर काट लाए। [28]उसने जेलखाने में जाकर उसका सिर काटा, और एक थाल में रखकर लाया और लड़की को दिया, और लड़की ने अपनी माँ को दिया। [29]यह सुनकर यूहन्ना के चेले आए, और उसके शव को ले गए और कब्र में रखा।

स्पष्ट तौर पर हेरोदेस यूहन्ना को सच्चा नबी मानता था। फिर भी हेरोदियास यूहन्ना के प्रचार से चिढ़ती थी और उसे मालूम था कि जब तक यूहन्ना जीवित है तब तक राज्य में उसका आदर नहीं हो सकता।[46] हेरोदेस अंतिपास के जन्म दिन से उसे यूहन्ना से पीछा छुड़ाने का अवसर

मिल गया।

आयतें 21-25. हेरोदेस ने अपने जन्म दिन पर **अपने प्रधानों, और सेनापतियों, और गलील के बड़े लोगों के लिये भोज किया।** सलोमी **भीतर आई, और नाच** किया। **हेरोदियास की बेटी** शब्दों से संकेत मिलता है कि यह घटिया दर्जे का असाधारण काम था। साफ़ तौर पर उसने कामुक नाच किया, ऐसा जैसा उस समय की वेश्याओं से करवाया जाता था। किसी भक्त यहूदी ने अपनी बेटी को इस प्रकार से नाचने की अनुमति नहीं देनी थी, और अधिकतर अन्यजाति स्त्रियों ने भी ऐसा नहीं करना था।[47] इस दृश्य से हमें मां बेटी के चरित्र की थोड़ी बहुत समझ आ जाती है।

सलोमी के नाच ने **हेरोदेस को और उसके साथ बैठनेवालों को प्रसन्न किया**। अपनी सौतेली बेटी के नाच में हेरोदेस के कमीनेपन ने खूब मस्ती की। उसने उसे वचन दिया, **''तू जो चाहे मुझ से माँग मैं तुझे दूँगा''**; **''मैं अपने आधे राज्य तक जो कुछ तू मुझ से माँगेगी मैं तुझे दूँगा।''** अपनी मां की सलाह पर सलोमी ने **''यूहन्ना बपतिस्मा देनेवाले का सिर एक थाल में''** मांग लिया। हेरोदियास के क्रूर, दुष्ट कामों से उसके हत्यारिन होने का पता चलता था। उसे पता था कि उसका पति शराबी है और उससे अपनी बात मनवाई जा सकती है।[48]

आयतें 26-28. चाहे **राजा बहुत उदास हुआ** (''बहुत ही परेशान हुआ''; NIV),[49] परन्तु अपने अतिथियों का मान रखने की उम्मीद से उसने उसकी विनती को मान लिया। सम्भवतया इस मूर्खतापूर्ण शपथ से फिर जाने पर उसका मान बढ़ जाता। किसी शपथ को जो अपने आप में गलत है, पूरा करना कभी सम्माननीय नहीं होता। हमें चौकस रहना आवश्यक है कि हम कैसी प्रतिज्ञाएं करते हैं।

हेरोदेस ने **तुरन्त** एक सिपाही को आज्ञा दी कि यूहन्ना का **सिर काट लाए। उसने जेलखाने में जाकर उसका सिर काटा, और एक थाल में रखकर लाया।** ''थाल'' (πίναξ, *pinax*) सलोमी को दिया गया, **और लड़की ने अपनी माँ को दिया**। हेरोदेस न्याय और मूर्खता का अनोखा मिश्रण था। चाहे उसने यूहन्ना की रक्षा की थी परन्तु वही उसकी मृत्यु का जिम्मेदार बन गया था। उसके मतवालेपन ने उसकी मूर्खतापूर्ण बातों और कामों से बचाव नहीं किया। उसकी शपथ एक सामान्य अभिव्यक्ति हो सकती है जिसे ज्यों का त्यों नहीं लिया जाना चाहिए था। परन्तु अपने दुष्ट मित्रों को प्रभावित करने के लिए उसने सलोमी को जो चाहे मांगने के लिए किए गए अपने बेकार वायदे को निभाया।

हेरोदियास ने बाद में अपने पति के साथ वफ़ादारी दिखाई; वह उसे रोम से देश निकाला दिए जाने के समय उसके साथ गई। परन्तु यूहन्ना ने उसे केवल एक व्यभिचारिण स्त्री को छोड़ किसी और दृष्टिकोण से नहीं देखा। इसलिए वह उसे मरवा डालना चाहती थी। सम्भवतया उसने न्याय के समय अपने कामों के लिए परमेश्वर के सामने जाने की बात कभी सोची नहीं या वह परमेश्वर की बात की कोई परवाह नहीं करती थी। उसे ''नये नियम की इज़ेबेल'' कहा जा सकता है। अपने पाप के लिए डांटे जाने के लिए परमेश्वर के नबी के विरुद्ध उसके बदला लेने ने उसे बाइबल की सबसे दुष्ट महिलाओं में मिला दिया।

आयत 29. यूहन्ना के **चेले** अंत तक वफ़ादार रहे क्योंकि वे **उसके शव को ले गए और उसे कब्र में रखा।** बेशक वह समझ गए होंगे कि यहून्ना ने ''आने वाले'' की तैयारी के लिए

अपने मिशन को पूरा कर लिया है, क्योंकि यूहन्ना ने खुद कहा था कि वह उनके बीच में है (यूहन्ना 1:6-9, 15, 19-27, 29-34)।

बाद में पिलातुस के यीशु का शव उनके चेलों को दे देने की तरह, हेरोदेस ने यूहन्ना का शव उसके चेलों को दे दिया। मत्ती 14:12 कहता है कि उन्होंने जाकर यीशु को इस बारे में बताया। पहले जब यूहन्ना निराश हुआ था, तब यीशु ने उसकी सचमुच की महानता की बात करते हुए उसकी प्रशंसा की थी (मत्ती 11:11)। यूहन्ना बपतिस्मा देने वाले ने अपना काम बाखूबी किया था परन्तु अब उसका काम पूरा हो गया था। हमें चकित होने की आवश्यकता नहीं होती जब संसार किसी व्यक्ति के जो इतना निर्भीक हो कि बड़ी बड़ी पदवियों वाले लोगों के पाप के लिए उन्हें डांट दे विरोध में खड़ा हो जाता है। परमेश्वर ने इस बड़े नबी को कालकोठरी में रहने दिया, परन्तु उसने हेरोदेस अंतिपास को किसी ईमानदार आदमी से सच सुनवाया।

यीशु का मसीहा के रूप में प्रचार करने के बाद, यूहन्ना के लिए जेल में बैठकर हैरान होना कठिन था कि यीशु आगे क्या करेगा। फिर भी यीशु एक वफ़ादार संदेश देने वाले के रूप में उसका आदर करता रहा (मत्ती 11:1-19)। परमेश्वर आम तौर पर पवित्र लोगों की गवाही से मृत्यु के द्वारा मोहर कर देता है: यूहन्ना बपतिस्मा देने वाले, यीशु, स्तिफनुस, यूहन्ना के भाई याकूब, प्रभु के भाई याकूब और दो प्रेरितों को छोड़ बाकी सब के साथ ऐसा ही हुआ। यूहन्ना की पहचान उस आवश्यक काम से हो सकती है जो बुराई के विरुद्ध प्रचार करने को उसे दिया गया था कि ''पेड़ों की जड़ों पर रखी कुल्हाड़ी'' ने जल्द ही उन पर चल जाना था (देखें मत्ती 3:10; लूका 3:9)। अपश्चात्तापी इस्राएल ने जल्द ही गिर जाना था क्योंकि जलती हुई आग उन लोगों के ऊपर पड़नी थी जिन्होंने यूहन्ना का प्रचार सुनकर अपश्चात्तापी रहना था।

यहां पर, ऐसा लगता है कि यीशु कुछ देर के लिए एकांत में चला गया। उसका जाना उन लोगों के जो यूहन्ना को बड़ा आदर देते थे, विद्रोह में अगुआई करने के लिए बचने के लिए हो सकता है। अधिक सम्भावना यह है कि वह यूहन्ना की तरह मारे जाने से बचने की कोशिश कर रहा था। बाद में उसकी घड़ी आने पर उसने यरूशलेम में जाना था।

पांच हज़ार पुरुषों को खिलाना (6:30-44)[50]

[30]प्रेरितों ने यीशु के पास इकट्ठे होकर, जो कुछ उन्होंने किया और सिखाया था, सब उसको बताया। [31]उसने उनसे कहा, ''तुम आप अलग किसी एकान्त स्थान में चलकर थोड़ा विश्राम करो।'' क्योंकि बहुत लोग आते जाते थे, और उन्हें खाने का अवसर भी नहीं मिलता था। [32]इसलिये वे नाव पर चढ़कर, सुनसान जगह में अलग चले गए। [33]बहुतों ने उन्हें जाते देखकर पहचान लिया, और सब नगरों से इकट्ठे होकर वहाँ पैदल दौड़े और उनसे पहले जा पहुँचे। [34]उसने उतर कर बड़ी भीड़ देखी, और उन पर तरस खाया, क्योंकि वे उन भेड़ों के समान थे, जिनका कोई रखवाला न हो; और वह उन्हें बहुत सी बातें सिखाने लगा। [35]जब दिन बहुत ढल गया, तो उसके चेले उसके पास आकर कहने लगे, ''यह सुनसान जगह है, और दिन बहुत ढल गया है। [36]उन्हें विदा कर कि चारों ओर के गाँवों और बस्तियों में जाकर, अपने लिये कुछ खाने को मोल लें।'' [37]उस ने उत्तर दिया, ''तुम ही उन्हें खाने को

दो।'' उन्होंने उससे कहा, ''क्या हम सौ दीनार की रोटियाँ मोल लें, और उन्हें खिलाएँ?''
[38]उसने उनसे कहा, ''जाकर देखो तुम्हारे पास कितनी रोटियाँ हैं?'' उन्होंने मालूम करके
कहा, ''पाँच और दो मछली भी।'' [39]तब उसने उन्हें आज्ञा दी कि सब को हरी घास पर
पाँति-पाँति से बैठा दो। [40]वे सौ सौ और पचास पचास करके पाँति-पाँति बैठ गए। [41]उसने
उन पाँच रोटियों को और दो मछलियों को लिया, और स्वर्ग की ओर देखकर धन्यवाद
किया, और रोटियाँ तोड़-तोड़ कर चेलों को देता गया कि वे लोगों को परोसें, और वे
दो मछलियाँ भी उन सब में बाँट दीं। [42]सब खाकर तृप्त हो गए, [43]और उन्होंने टुकड़ों से
बारह टोकरियाँ भर कर उठाईं, और कुछ मछलियों से भी। [44]जिन्होंने रोटियाँ खाईं, वे पाँच
हज़ार पुरुष थे।

यूहन्ना की मृत्यु से चेले दु:ख में इकट्ठा हो गए होंगे, क्योंकि उनमें से कई यहून्ना के उन्हें मसीह की ओर संकेत करने के समय तक उसके चेले थे। यूहन्ना की मृत्यु से चेले निराश हो गए थे और चकित हो रहे थे, ''यदि यीशु अपने रिश्तेदार और अग्रदूत यूहन्ना की रक्षा नहीं कर पाया तो वह हमारी रक्षा कैसे कर सकता है?'' अगले दिनों में होने वाली घटनाओं से उनका भरोसा बंधा होगा। आस पास के खतरों से यीशु ने अपने प्रेरितों में विश्वास बढ़ाने पर ज़ोर दिया होगा, जिससे वे उस कठिन काम को, जो उन्होंने करना था कर पाते।

यीशु का भीड़ को खिलाना, सुसमाचार के विवरणों में दो बार हुआ; और दोनों ही बार चेलों को यह समझ में नहीं आ रहा था कि लोगों को कैसे खिलाएं (6:30-44; 8:1-9)। हम यह मान लेंगे कि यीशु के अनुयायियों को पहली बार ही कुछ समझ आ गया होना चाहिए। दूसरे अवसर के बाद (8:14-21 में दोनों को याद दिलाया गया देखते हैं), यीशु ने अपने प्रेरितों को न समझने के कारण डांटा। मरकुस 6:52 समस्या को संक्षेप में बताता है: ''उनके मन कठोर हो गए।'' इस कारण वे आश्चर्यकर्म का पूरा अर्थ नहीं समझ पाए। 6:30-44 वाली यह घटना इतनी ज़बर्दस्त है कि यीशु के पुनरुत्थान के बाद, सुसमाचार के चारों विवरणों में, केवल इसी आश्चर्यकर्म का उल्लेख है।

आयत 30. प्रेरितों ने यीशु के पास इकट्ठे होकर, जो कुछ उन्होंने किया और सिखाया था, सब उसको बताया। मरकुस में केवल एक बार उन बारहों को ''प्रेरितों'' (ἀπόστολος, *apostolos*) कहकर बुलाया गया। इसका अर्थ यह है कि वे राजा मसीह के व्यक्तिगत प्रतिनिधि अर्थात संसार के लिए उसके राजदूत थे। यह शब्द उन्हें प्रचार करने, सुसमाचार सुनाने, चंगा करने, और दुष्टात्माओं को निकालने की आज्ञा पर ज़ोर देता है। (लूका 10:17-20 में सत्तर जनों ने दुष्टात्माओं पर अधिकार होने पर आनन्द किया था।)

प्रेरितों के काम में उनके अधिकार और सामर्थ पर ज़ोर दिया गया है। प्रेरितों 5:1-11 में हनन्याह और सफ़ीरा की मृत्यु के साथ प्रेरितों की सामर्थ को स्थापित करने का चरम मिलता है। उस चौंकाने वाली घटना के बाद, लोग प्रेरितों के सामने किसी भी प्रकार का झूठ बोलने से डरते थे, क्योंकि उन्हें समझ में आ गया था कि उनके साथ झूठ बोलने का मतलब परमेश्वर के साथ झूठ बोलना है। इन दोनों मृत्यु से मसीह के प्रतिनिधियों के रूप में प्रेरितों की प्रतिष्ठा को बढ़ा दिया, और कलीसिया में पहले से कहीं अधिक लोग मिलाए गए (प्रेरितों 5:14)। मसीह

के बाद पृथ्वी पर प्रेरित सबसे बड़े अधिकारी थे और अपने लिखित वचन के द्वारा वे आज भी अधिकारी हैं। पत्रियों में एक बात पर ज़ोर दिया गया है कि वे प्रभु की कलीसिया की नींव का भाग थे (देखें इफि. 2:20)।

आयत 31. यीशु ने उनसे कहा, ''**तुम आप अलग किसी एकान्त स्थान में चलकर थोड़ा विश्राम करो।**'' प्रचार का उनका अभियान रोमांचकारी तो था परन्तु फिर भी वे थक गए होंगे। यीशु को मालूम था कि उन्हें विश्राम की आवश्यकता है। वे इतने व्यस्त थे कि **उन्हें खाने के लिए अवसर भी नहीं मिलता था**। इवैंजलिस्ट वैंस हैवनर ने कहा है, ''यदि आप थककर [कुछ देर आराम] नहीं करते तो टूट जाओगे!''[51]

आयतें 32-34. विश्राम करने के प्रयास में यीशु और उसके प्रेरित **सुनसान जगह में अलग चले गए**, परन्तु लोग उनके पीछे-पीछे थे। हवा न चलने पर, भीड़ लगभग दस मील से कम झील के आस-पास चल पाई, उससे कम समय में जितनी देर में नाव से पार जाया जा सकता था।[52] जिस कारण वे **सब नगरों से इकट्ठे होकर वहाँ पैदल दौड़े** और यीशु के **उतर** ने की राह देखते रहे। कोई सामान्य व्यक्ति होता तो उसने अपनी निजता पर इस हमले से नाराज़ हो जाना था परन्तु यीशु ने लोगों को **उन भेड़ों के समान** देखा **जिनका कोई रखवाला न हो**, जिससे उसे दु:ख हुआ और उसने उन पर **तरस** खाया। इसलिए वह **उन्हें बहुत सी बातें सिखाने** के अवसर के अवसर को रोक नहीं पाया।

धन्य सामरी के दृष्टांत को बताते हुए यीशु ने ''तरस'' शब्द का इस्तेमाल किया (लूका 10:33), और मत्ती 14:14, 15:32, और मरकुस 8:2 में यह शब्द यीशु की अपनी भावनाओं को दिखाता है। इस गुण में, उसके दृष्टांतों के कुछ लोग उसके साथ मेल खाते थे (मत्ती 18:27; लूका 10:33; 15:20)। इस दृश्य में तरस केवल यीशु की ओर से था। लोगों को सिखाने की उसकी इच्छा अपने आप में बड़े तरस का बड़ा काम था।

आयतें 35-37. दिन ढलने पर **उसके चेले** परेशान होकर कहने लगे: ''**यह सुनसान जगह है, और दिन बहुत ढल गया है।**'' KJV में कहा गया है कि यह जगह ''वीरान'' थी परन्तु वहां बहता पानी बहुत था। ''सुनसान'' (ἔρημος, *erēmos*) यह समझाने में सहायता करता है कि आम तौर पर यहां आबादी नहीं थी। यह हमें यह समझने में सहायता करता है कि प्रेरितों 8:26 में जहां खोजे को बपतिस्मा दिया गया था वह ''रेगिस्तान'' (KJV) हो सकता है, परन्तु फिर भी वहां डुबकी के लिए काफ़ी पानी था।

चेलों ने आगे कहा, ''**उन्हें विदा कर कि चारों ओर के गाँवों और बस्तियों में जाकर, अपने लिये कुछ खाने को मोल लें।**'' प्रेरितों ने भीड़ को यूं ही भेज देना था परन्तु यीशु का मन आत्मिक और शारीरिक आवश्यकताओं के लिए तरस से भरा था। ऐसे समयों में यीशु की भावनाओं को विस्तार से बताते हुए मत्ती 9:36-38 कहता है:

> जब उसने भीड़ को देखा तो उस को लोगों पर तरस आया, क्योंकि वे उन भेड़ों के समान जिनका कोई रखवाला न हो, व्याकुल और भटके हुए से थे। तब उसने अपने चेलों से कहा, ''पके खेत तो बहुत हैं पर मजदूर थोड़े हैं। इसलिये खेत के स्वामी से विनती करो कि वह अपने खेत काटने के लिये मजदूर भेज दे।''

भोजन की आवश्यकता के सम्बन्ध में, प्रेरितों ने दो सुझाव दिए थे, जिनमें से कोई भी काम आने वाला नहीं था। इस जंगली इलाके में दिन ढलने पर लोगों की भोजन की आवश्यकता परेशान करने वाली है। यीशु ने उन्हें उपवास रखने की आज्ञा नहीं दी, क्योंकि यह स्वैच्छिक उपवास रखने की उसकी शिक्षा के साथ मेल नहीं खाना था। इसके अलावा वापस जाने से कई लोगों की हिम्मत जवाब दे सकती थी।

यीशु में लोगों की दिलचस्पी बहुत थी। ये भोजन साथ लाने की बात सोचे बिना इतनी दूर तक उसके पीछे आ गए थे। मरकुस और यूहन्ना ने बताया है कि इतनी बड़ी भीड़ के लिए कितना भोजन चाहिए था और यह कितना महंगा होना था: **''क्या हम सौ दीनार की रोटियाँ मोल लें, और उन्हें खिलाएँ?''** ''दीनार'' (δηνάριον, *dēnarion*) एक रोमी सिक्का था जो एक या दो रोटी खरीदने के लिए काफ़ी था।[53] एक अर्थ में चेलों का उत्तर था, ''हम छह महीने रोज़ मज़दूरी कर सकते हैं और फिर भी इतना नहीं कमा सकते कि इस भीड़ के लिए भोजन खरीद सकें!'' जिसे प्रेरितों ने एक बड़ी समस्या के रूप में देखा, उसी बात को यीशु ने परमेश्वर की महिमा दिखाने के अवसर के रूप में माना।

यीशु ने समस्या को सुलझाने से पहले कुछ देर तक प्रेरितों को उस मसले से जूझने दिया होगा। यह जानते हुए कि इतना भोजन देने का उनके पास कोई तरीका नहीं है, उसने उन पर यह कहते हुए दबाव डाला, **''तुम ही उन्हें खाने को दो।''** उसने प्रेरितों पर ज़ोर दिया कि वे इस ज़िम्मेदारी को दूसरों पर न डालें। दिन ढल चुका था और इस निर्जन क्षेत्र में रोटियां ढूंढ़ना बड़ी समस्या होनी थी। इस बड़ी समस्या के लिए जिसका मनुष्य के पास कोई समाधान नहीं था, यीशु बचाव के लिए आया।

यूहन्ना 6:5 कहता है कि यीशु ने इस विषय पर सबसे पहले फिलिप्पुस से बात की। यह पूछते हुए कि क्या किया जाए वह सलाह मांग रहा था। वह प्रेरितों को मानसिक तौर पर तैयार कर रहा था ताकि किया जाने वाला आश्चर्यकर्म उन पर और प्रभाव डाले। हो सकता है कि इसी कारण पांच हज़ार पुरुषों को खिलाना मसीह का एक ऐसा आश्चर्यकर्म है जो सुमासाचार के चारों विवरणों में दर्ज है।

आयत 38. यीशु ने चेलों से पूछा, **''जाकर देखो तुम्हारे पास कितनी रोटियाँ हैं?''** केवल यूहन्ना कहता है कि भोजन का पता लगाने के लिए अंद्रियास गया और उसे लड़का मिला जिसके पास कुछ रोटियां और मछलियां थीं (यूहन्ना 6:8, 9)। **पांच** रोटियां जौ की रोटियां होंगी जो कि गरीबों का खाना था; **दो मछली** नमक लगी सूखी मछली होगी।[54] लड़के की मां ने उससे कहा होगा कि लौटने में देर हो जाने की स्थिति में साथ कुछ रोटी ले जा। शायद उसने यह भी सोचा हो कि क्या पता वह उस भीड़ के साथ चला जाए जो यीशु के पीछे जा रही थी। उस समय यहूदी टोलियों के साथ चलना बच्चों के लिए सुरक्षित माना जाता होगा। जब बारह वर्ष की आयु में यीशु अपनी माता और पिता से अलग हो गया था, तो पहले उन्हें कोई चिंता नहीं हुई थी, क्योंकि उन्होंने यह मान लिया कि वह उनकी टोली के दूसरों के साथ कहीं होगा (लूका 2:41-45)।

आयत 39. तब उसने उन्हें आज्ञा दी कि सब को हरी घास पर पाँति-पाँति से बैठा दो। घास हरी केवल बहार के मौसम के अंत में होनी थी जोकि शायद अप्रैल के बीच का समय था।[55]

लोग ''पांतियों'' में बैठे थे। यूनानी बाइबल में, इस शब्द को दोहराया गया है: (हिन्दी की तरह-अनुवादक) συμπόσια συμπόσια (*sumposia sumposia*) या ''सिम्पोज़ियम, सिम्पोज़ियम।'' इस अभिव्यक्ति का मूल अर्थ ''शराब की महफ़िल'' था, परन्तु बाद में इसका अर्थ दावत हो गया।[56] ''सिम्पोज़ियम'' शब्द का इस्तेमाल अब ''किसी विशेष विषय पर चर्चा के लिए बुलाई गई सभा या कॉन्फ्रेंस'' या ''किसी विशेष विषय पर लेखों का संग्रह'' के अर्थ में होता है।[57] हम कह सकते हैं, ''उन्हें बातचीत करने वाली टोलियों में बैठना था।''

आयत 40. इस आयत में **पांति पांति** दोहराए गए अलग यूनानी शब्द से लिया गया है। यहां यह शब्द πρασιαὶ πρασιαὶ (*prasiai prasiai*) है जिसका इस्तेमाल बगीचे की सब्जियों या फूलों की कतारों के लिए किया जाता था।[58] भूख से परेशान लोग ऐसे लग रहे थे जैसे ''हरी घास पर फैले जंगली फूलों की गुदड़ी हो'' (6:39; MSG)।

लोगों के **सौ सौ और पचास पचास** की ''पांतियों'' या कतारों में बैठ जाने से गिनती करना आसान हो जाना था और भोजन बड़े आराम से बांटा जा सकना था। पुरुष इतना भोजन ले सकते थे कि वे अपनी पत्नियों और बच्चों के साथ बांट सकें। मत्ती 14:21 हमें बताता है कि गिनती में महिलाओं और बच्चों को शामिल नहीं किया गया था।

आयत 41. यीशु ने **पाँच रोटियों को और दो मछलियों को लिया** और **धन्यवाद किया**। बेशक यीशु ऐसा सामान्यतया करता होगा। यह धन्यवाद देने की तरह ही है जो उसने प्रभु-भोज की स्थापना के समय दिया (मरकुस 14:23)। प्रेरितों 27:35 में हमें पौलुस का यही उदाहरण मिलता है। खाना आरम्भ करने का यह सामान्य व्यवहार होगा जो कि यीशु और प्रेरितों का भी था। यूहन्ना 6:11 जहां यह कहता है कि यीशु ने ''धन्यवाद'' किया, वहीं मरकुस 14:22 उसके भोजन की ''आशीष'' मांगने की बात कहता है (देखें मत्ती 14:19; लूका 9:16)। इससे यह पता चलता है कि आशीषित भोजन के लिए वह परमेश्वर को धन्यवाद दे रहा था और इसके लिए उससे आशीष मांग रहा था। प्रार्थना में परमेश्वर का नाम लेने से भोजन हमारे इस्तेमाल के लिए पवित्र हो जाता है। ''क्योंकि परमेश्वर की सृजी हुई हर एक वस्तु अच्छी है, और कोई वस्तु अस्वीकार करने के योग्य नहीं; पर यह कि धन्यवाद के साथ खाई जाए। क्योंकि परमेश्वर के वचन और प्रार्थना के द्वारा शुद्ध हो जाती है'' (1 तीमु. 4:4, 5)। भोजन उपलब्ध करवाने के लिए परमेश्वर को धन्यवाद देने के बाद यीशु **रोटियाँ तोड़-तोड़ कर चेलों को देता गया कि वे लोगों को परोसें, और वे दो मछलियाँ भी उन सब में बाँट दीं**।

आयतें 42, 43. जब **सब खाकर तृप्त हो गए**, तो बचा हुआ भोजन **उठाया** गया। **टुकड़ों से बारह टोकरियाँ भर कर** उठाने की हमारे प्रभु की किफ़ायत पर ध्यान दिया जाना चाहिए। यूहन्ना 6:12 के अनुसार यीशु ने आज्ञा दी कि बचे हुए टुकड़े इकट्ठे किए जाएं। ये ''टोकरियां'' यहूदी लोग आम तौर पर यह सुनिश्चित करने के लिए ले जाते थे कि जहां भी वे जाएं वहां कोशर भोजन ले सकें। रोमी लोग यहूदियों के ऐसा करने का उनकी कई अनूठी परम्पराओं में से एक कहकर मज़ाक उड़ाते थे।[59] ''भरी हुई बारह टोकरियां'' से यह सुझाव मिल सकता है कि हर प्रेरित के पास आने वाले दिनों के लिए अपना बचा हुआ भोजन था। प्रेरितों ने जब इन बचे हुए टुकड़ों में से खाना था जो कि शायद कई हफ्तों तक रहना था, तब तक उन्होंने इस आश्चर्यकर्म को याद करते रहना था। हमें आश्चर्य हो सकता है कि जंगल में ''स्वर्गदूतों की रोटी'' लगातार

खाते रहने पर इस्राएलियों की तरह उन्होंने भी कहीं एक ही भोजन खाते रहने की शिकायत न की हो (देखें गिनती 11:6; भजन 78:25)।

स्वाभाविक है कि इस आश्चर्यकर्म पर संदेह करने वालों के हमले हुए हैं। कइयों का दावा है कि जब छोटे लड़के ने अपनी रोटियां और मछली दीं, तो भीड़ के दूसरे लोग शर्मिंदा हुए और वे अपना अपना भोजन ले आए। यदि ऐसा है तो बची हुई इतनी रोटियों और मछलियों का क्या जवाब हो सकता है?

आयत 44. इस अवसर पर कुल **पांच हज़ार पुरुष** थे जिन्होंने खाना खाया। ''पुरुष'' के लिए शब्द सामान्य शब्द ἄνθρωπος (*anthrōpos*) जिसमें आम तौर पर स्त्रियां शामिल होती हैं के बजाय ἀνήρ (*anēr,* नर) है।

यूहन्ना ने यह निष्कर्ष जोड़ा, ''तब जो आश्चर्यकर्म उसने कर दिखाया उसे वे लोग देखकर कहने लगे, 'वह भविष्यद्वक्ता जो जगत में आनेवाला था निश्चय यही है''' (यूहन्ना 6:14)। भीड़ में चाहे बहुत से अन्यजाति लोग होंगे परन्तु उन्होंने भी ऐसे ही आश्चर्यकर्म के बारे में सुना होगा जिससे एलिय्याह के भविष्यद्वक्ता होने की शक्ति को मान्यता देने में सहायता मिली थी (2 राजा. 4:42-44)। उन्होंने यीशु को पुराने नियम के नबियों के जैसा एक नबी मान लिया।

पांच हज़ार पुरुषों को खिलाने के इस आश्चर्यकर्म के अगले दिन यीशु ने जीवन की रोटी पर एक प्रवचन दिया। लोग ''जीवन की रोटी'' ढूंढ़ रहे थे और यीशु ने शारीरिक रोटी भी दे दी थी। ''स्वर्ग से रोटी'' वह आत्मिक भोजन है जिससे जीवन मिलता है (यूहन्ना 6:32, 33)। यूहन्ना 6:63 में यीशु ने यह बताया, ''आत्मा तो जीवनदायक है, शरीर से कुछ लाभ नहीं; जो बातें मैं ने तुम से कही हैं वे आत्मा हैं, और जीवन भी हैं।'' आत्मिक जीवन पाने के लिए हमें मसीह की ''बातों'' को खाते रहना चाहिए।

यीशु गलील की झील पर चलता है (6:45-52)[60]

[45]तब उसने तुरन्त अपने चेलों को नाव पर चढ़ने के लिये विवश किया कि वे उससे पहले उस पार बैतसैदा को चले जाएँ, जब तक कि वह लोगों को विदा करे। [46]उन्हें विदा करके वह पहाड़ पर प्रार्थना करने को गया। [47]जब साँझ हुई, तो नाव झील के बीच में थी, और वह अकेला भूमि पर था। [48]जब उसने देखा कि वे खेते खेते घबरा गए हैं, क्योंकि हवा उनके विरुद्ध थी, तो रात के चौथे पहर के निकट वह झील पर चलते हुए उनके पास आया; और उनसे आगे निकल जाना चाहता था। [49]परन्तु उन्होंने उसे झील पर चलते देखकर समझा कि भूत है, और चिल्ला उठे; [50]क्योंकि सब उसे देखकर घबरा गए थे। पर उसने तुरन्त उनसे बातें कीं और कहा, ''ढाढ़स बाँधो: मैं हूँ; डरो मत!'' [51]तब वह उनके पास नाव पर आया, और हवा थम गई: और वे बहुत ही आश्चर्य करने लगे। [52]वे उन रोटियों के विषय में न समझे थे, क्योंकि उनके मन कठोर हो गए थे।

आयतें 45, 46. लोगों के साथ व्यस्त दिन के बाद यीशु ने अपने पिता के साथ बात करने के लिए एकांत ढूंढ़ा। यूहन्ना 6:15 कहता है कि भीड़ यीशु को ज़बर्दस्ती राजा बनाना चाहती थी और उसके जाने का यह भी एक कारण था। यह उसके बिल्कुल उल्ट था जो वह चाहता

था (देखें यूहन्ना 18:36)। हो सकता है कि उसके बहुत देर तक प्रार्थना करने की बात को समझना और उसका अनुकरण करना हमारे लिए कठिन हो। यीशु का प्रार्थनापूर्वक जीवन एक ऐसा नमूना छोड़ देता है जिसे बहुत कम लोग समझ या मान सकते है। वह अकेले में परमेश्वर के साथ गम्भीर बातचीत कर रहा था, न कि लोगों के सामने छोटी छोटी प्रार्थनाएं कर रहा था।

विशेष तौर पर कठिन समयों में, यीशु प्रार्थना में पूरी पूरी रात बिता सकता था। लूका 6:12 में हम इसे देखते हैं, जब उसने अगले दिन अपने प्रेरितों का चयन करना था। इस अवसर पर, उसके प्रार्थना में बिताए समय को किसी प्रिय मित्र या परिवार के सदस्य के साथ जिसे हमने काफ़ी दिनों से देखा न हो, फोन पर लम्बी बातचीत पर मिलाया जा सकता है। अनन्तकाल में हमें परमेश्वर के साथ ऐसी नज़दीकी मिल सकती है।

जब यीशु ने हमें ''आदर्श प्रार्थना'' दी, तो उसने उन शब्दों का इस्तेमाल किया जिनसे पच्चीस सैकंड की आसानी से प्रार्थना की जा सकती है। बेशक यह केवल एक नमूना था यानी एक रूपरेखा जिसे ऐसे मामलों पर परमेश्वर के साथ बात करते हुए विस्तार दिया जा सकता है।

यीशु की प्रार्थनाएं उपदेशपूर्ण हैं[61] क्योंकि पहले तो वे निस्वार्थ थीं। लूका 22:32 हमें पतरस के विश्वास के न डोलने के लिए उसकी प्रार्थना को बताता है। दूसरा वह क्षमा करने वाली प्रार्थना करता था (लूका 23:34)। तीसरा, उसकी प्रार्थनाएं जोश से भरी हुई और बड़ी ईमानदारी से की गई होती थीं (लूका 22:44)। अंत में उसकी प्रार्थनाएं मन से होती थीं (मत्ती 26:39, 53, 54)। यीशु अगले चौबीस घण्टों में जो कुछ होने वाला था उससे बचाव में सहायता के लिए 72,000 से अधिक स्वर्गदूतों (''बारह पलटन'';[62] मत्ती 26:53) को बुलाने के लिए प्रार्थना कर सकता था। परन्तु यह उसके पिता की इच्छा नहीं थी। उसने प्रार्थना की, ''... मेरी नहीं परन्तु तेरी ही इच्छा पूरी हो'' (लूका 22:42)।

भीड़ को खिलाने के **तुरन्त** बाद यीशु ने **अपने चेलों को नाव पर चढ़ने के लिये विवश किया कि वे उससे पहले उस पार बैतसैदा को चले जाएँ, जब तक कि वह लोगों को विदा करे**। हर किसी के चले जाने के बाद **वह पहाड़ पर प्रार्थना करने को गया**। उसने ऐसा क्यों किया? भीड़ के यीशु को राजा बनाने की कोशिश करने का खतरा आश्चर्यकर्म के बाद हुआ (यूहन्ना 6:15)। यह ऐसा प्रलोभन था जिसका सामना करने के लिए प्रेरित अभी तैयार नहीं थे क्योंकि वे उसे राजा बनाने के प्रयास में भीड़ के साथ मिल सकते थे, जिससे उन्होंने पिता और मसीह की मंशा को ठुकरा देना था। राज्य के उनके विचार अधिक ही राजनैतिक थे। लोगों के लिए संसार को भूलकर प्रभु के स्वर्गीय उद्देश्यों पर विचार करना कठिन होता है!

इसके अलावा प्रेरितों को अपने विश्वास को मज़बूत करने के लिए एक और सबक की आवश्यकता थी। पांच हज़ार से अधिक लोगों के साथ भोजन करने से उनके मन में आ गया हो सकता है कि उन्हें आत्मिक बुलंदियां मिल गईं हैं, परन्तु अभी वे आत्मिक तौर पर बड़े नहीं हुए थे। 6:52 में हमें पता चलता है कि वे रोटियों और मछलियों के आश्चर्यकर्म को यीशु के उद्देश्य की अच्छी तरह से समझ पाने के लिए इस्तेमाल नहीं कर रहे थे।

कुछ लोग सामान्य मसीही जीवन के लिए अपने विश्वास की तैयारी के लिए विशेष आत्मिक अनुभव पाना चाहते हैं। परन्तु हमें याद रखना आवश्यक है कि हम भावनाओं से नहीं बल्कि विश्वास से चलते हैं (2 कुरि. 5:7)। यही कारण है कि आत्मिक दानों का दुरुपयोग

होने पर पहली सदी की कलीसिया में सचमुच में कमज़ोरी आ सकती थी। किसी के व्यक्तिगत रूप में संतुष्ट के लिए इन चमत्कारी दानों (जैसे अन्य भाषा बोलना) से केवल आत्मिक घमण्ड आ सकता है।

आयतें 47, 48. इससे पहले एक बार यीशु उपदेश के एक रोमांचकारी दिन के बाद अपने प्रेरितों को एक तूफ़ान में ले गया (देखें मरकुस 4:35-41)। हर नई परीक्षा के लिए और अधिक विश्वास की आवश्यकता थी। पहले, यीशु नाव में उनके साथ था; परन्तु इस बार वे अकेले थे। यीशु पहाड़ पर प्रार्थना कर रहा था, शायद परमेश्वर से उनके जीवन की समस्याएं आने पर उन्हें अपने विश्वास का इस्तेमाल करने में सहायता के लिए। उन्हें अभी भी बहुत कुछ सीखना बाकी था। पाठक के लिए यह चकित करने वाला हो सकता है कि 6:52 के अनुसार उनके मन ''कठोर हो गए थे।''

सांझ फिर हो गई थी और **नाव झील के बीच में थी**। यीशु चाहे अभी **भूमि पर** था, परन्तु वह देख सकता था कि उसके प्रेरित **खेते खेते घबरा गए** हैं क्योंकि **हवा उनके विरुद्ध थी**। **वह झील पर चलते हुए उनके पास गया** और **चौथे पहर** जो कि रात का अंतिम भाग था उनसे जा मिला (3:00 से 6:00 प्रात:); परन्तु वास्तव में वह **उनसे आगे निकल जाना चाहता था**। शायद यीशु ने जानबूझकर उन्हें खतरे का सामना करने दिया; इससे उन्हें उसकी उपस्थिति के लिए और भी धन्यवाद देना था। क्या कई बार ऐसा लगता है कि यीशु ''पास से गुजर रहा'' है जब हमें उसकी सबसे अधिक आवश्यकता होती है? हो सकता है कि वह हमें परीक्षाओं का सामना करने दे, जिससे हमें आत्मिक रूप में बढ़ने में सहायता मिले।

आयतें 49, 50. गलील की झील पर तेज आंधी तब भी आ सकती है जब मौसम साफ़ हो। शायद पूर्णिमा में यीशु और उसके प्रेरित झील पर एक-दूसरे को देख सकते थे। फिर भी लहरों के उठने और बंद होने के साथ उसके उठने और झुकने पर उन्हें लगा कि वह कोई **भूत** (φάντασμα, *phantasma*) है, जबकि वह **झील पर चल** रहा था न कि इसके बीच में से। पहली सदी के यहूदियों में अंधविश्वास पाए जाते थे जिन्हें मसीह के प्रकाशनों ने एकदम से दूर नहीं किया गया। बाद में, पतरस को चमत्कारी ढंग से जेल से छूटने पर ''उसका स्वर्गदूत'' मान लिया (प्रेरितों 12:15)।

सब उसे देखकर घबरा गए थे। डर जाने पर व्यक्ति के मन में कई प्रकार के विचार आ सकते हैं। प्रेरितों का ''डर'' (ταράσσω, *tarassō*) डरावना था; इसी शब्द का अनुवाद ''घबरा गया'' (''परेशान हुआ''; NIV) हुआ है, मत्ती 2:3 में ''यहूदियों के राजा'' के जन्म की बात बताए जाने पर हेरोदेस के भय का वर्णन करने के लिए इस्तेमाल हुए। **तुरन्त** यीशु ने अपने डरे हुए चेलों को अपनी पहचान बताई और कहा, ''**ढाढ़स बाँधो: मैं हूँ; डरो मत!**''

आयतें 51, 52. मरकुस पतरस के पानी पर चलने की कोई बात नहीं करता। यह विवरण केवल मत्ती 14:28-31 में है। पतरस चाहे यीशु की ओर चलने के लिए नाव में से बाहर निकला परन्तु आंधी को देखकर उसका विश्वास डगमगा गया। फिर, जब वह डूबने लगा, तो उसने यीशु से उसे बुला लेने को कहा।

यीशु के नाव में जाने पर **हवा** एकदम **थम गई**। प्रेरित **बहुत ही आश्चर्य करने लगे** और उन्हें यकीन हो गया कि यीशु परमेश्वर का पुत्र है (देखें मत्ती 14:33)। मत्ती जहां यह संकेत देता

हुआ लगता है कि उनमें बड़ा विश्वास था, वहीं मरकुस उस बड़ी सामर्थ की जो उसने रोटियां बढ़ाकर दिखाई थीं समझ की उनकी कमी पर हैरान हुआ लगता है: **वे उन रोटियों के विषय में न समझे थे।** दोनों विवरण उनके विश्वास के अलग-अलग पहलुओं पर ध्यान दिलाते हैं।

जैसे यीशु पानी पर चला, वैसे ही पुराना नियम परमेश्वर के लहरों पर या लहरों में से चलने की बात करता है (अय्यूब 9:8; 38:16; भजन 77:19)। यशायाह ने लिखा, ''यहोवा जो समुद्र में मार्ग और प्रचण्ड धारा में पथ बनाता है'' (यशा. 43:16)। यीशु का कथन ''मैं हूं'' (मरकुस 6:50) पुराने नियम के परमेश्वर की ओर इशारा करने के लिए दिया गया हो सकता है जो पानी में से जा सकता है![63] वह जो रोटियां और मछलियां बढ़ा सकता है उसके लिए पानी पर चलना कोई बड़ी बात नहीं है।

क्योंकि उनके मन कठोर हो गए थे। प्रेरितों ने डरने के थोड़ी देर बाद चाहे उसे परमेश्वर का पुत्र मान लिया था, परन्तु अपने मन की कठोरता के कारण उन्हें यह पूरी समझ नहीं आई थी कि वह कौन है (देखें मत्ती 14:33)। उन्हें बढ़ा हुआ भोजन खाने पर परमेश्वर के ईश्वरीय पुत्र के रूप में उसकी महिमा करनी चाहिए थी।

विलियम बार्कले ने लिखा है, ''जब मसीह होता है तो तूफ़ान थम जाता है।''[64] यहां पर एक और आश्चर्यकर्म हुआ, क्योंकि यीशु के नाव में कदम रखते ही वे किनारे पर पहुंच गए (देखें यूहन्ना 6:21)।

गन्नेसरत के निकट चंगाइयां (6:53-56)[65]

[53]वे पार उतरकर गन्नेसरत में पहुँचे, और नाव घाट पर लगाई। [54]जब वे नाव पर से उतरे, तो लोग तुरन्त उसको पहचान कर, [55]आस-पास के सारे देश में दौड़े, और बीमारों को खाटों पर डालकर, जहाँ-जहाँ समाचार पाया कि वह है, वहाँ-वहाँ लिये फिरे। [56]और जहाँ कहीं वह गाँवों, नगरों, या बस्तियों में जाता था, लोग बीमारों को बाज़ारों में रखकर उससे विनती करते थे कि वह उन्हें अपने वस्त्र के आँचल ही को छू लेने दे: और जितने उसे छूते थे, सब चंगे हो जाते थे।

आयत 53. गन्नेसरत कफ़रनहूम के दक्षिण पश्चिम में लगभग तीन मील, गलील की झील के उत्तर-पश्चिमी किनारे पर मैदानी इलाका था। जोसेफ़स ने इस इलाके का वर्णन सुन्दर, उपजाऊ और घनी आबादी वाले इलाके के रूप में किया।[66] प्रेरित कफ़रनहूम की ओर जाने लगे थे, परन्तु हवा ने कुछ हद तक उनका रास्ता बदल दिया लगता है।

आयतें 54, 55. नया जोश आ गया **जब वे नाव पर से उतरे**। यीशु की पहचान अब चंगाई देने वाले के रूप में हो चुकी थी (देखें 6:56)। कौन होगा जो उसे देखना न चाहता हो? कई तो आस पास के इलाकों में यह घोषणा करने के लिए कि यीशु आ रहा है **आस पास के सारे देश में दौड़े** ताकि **जहां जहां समाचार पाया कि वह है बीमारों को वहां ले जाएं**। इतने सारे लोगों के मिन्नत करने से एक बार फिर से यीशु का मन पिघल गया और उसे उन पर तरस आ गया। यह भी हो सकता है कि प्रेरितों के प्रचार से उनकी दिलचस्पी उसमें बढ़ गई हो।

आयत 56. और जहाँ कहीं वह गाँवों, नगरों, या बस्तियों में जाता था, लोग बीमारों

को बाज़ारों में रखकर उससे विनती करते थे कि वह उन्हें अपने वस्त्र के आँचल ही को छू लेने दे। बेशक यीशु के आंचल को छूने की उम्मीद से गलियों में कतारों में लगे लोगों ने उस स्त्री की कहानी सुनी थी जो उसका आंचल छूने से ही चंगी हो गई थी (मरकुस 5:25-34); उनका विश्वास था कि वे यदि यीशु के इतना पास चले जाएं कि उस तक पहुंच पाएं तो उनके रोगी ठीक हो सकते हैं।

और जितने उसे छूते थे, सब चंगे हो जाते थे। हमें ऐसा कोई संकेत नहीं मिलता कि कोई यीशु के पास चंगा होने के लिए आया हो और वह निराश होकर गया, चाहे कई बार किसी को परीक्षा में से गुज़रना पड़ता था, जैसे 5:25-34 वाली स्त्री को यीशु ने अपनी पहचान बताने के लिए कहा। अपनी बेटी के लिए प्रार्थना करने वाली स्त्री के साथ भी ऐसा ही हुआ (7:24-30; मत्ती 15:21-28)। यीशु के आश्चर्यकर्म वास्तविक थे और उन्हें साफ़ देखा जा सकता था। उसके आश्चर्यकर्मों का संसार में कोई सानी नहीं था।

आलोचक कहते हैं कि ये लोग अपने सुख सुविधा के लिए यीशु को ढूंढ़ रहे थे। शायद उनके लक्ष्य इतने ऊंचे नहीं थे, परन्तु जब चंगाई देने वाला आपके पास हो तो उससे लाभ उठाना क्या गलत था? आदर्श रूप में कहें तो हमें परमेश्वर को इस्तेमाल करने के लिए नहीं बल्कि उसके द्वारा इस्तेमाल किए जाने की खोज करनी चाहिए। बेशक प्रभु की ओर से चंगाई पाने वाले लोग उसके लिए कहीं अधिक प्रभावशली ढंग से काम करने वाले थे। जब हमारी आवश्यकताएं ऐसी होती हैं जिन्हें हम पूरा नहीं कर सकते। निश्चय ही हमारा प्रेमी परमेश्वर चाहता है कि हम ''उसे इस्तेमाल'' करें।

प्रासंगिकता

घर के लोगों द्वारा ठुकराया गया (6:1-6)

यीशु कफ़रनहूम से चला गया; और चलते हुए वह नासरत के छोटे से कस्बे में पहुंचा, जहां पला बढ़ा और पौरुष तक पहुंचा था। अपने गृहनगर से शायद साल या इससे अधिक समय से पहले गए होने के बाद, वह उस व्यक्ति के रूप में वापस आया जिसे परमेश्वर की ओर से भेजा गया इस्राएल का भविष्यद्वक्ता बताया जा रहा था (कम से कम कुछ स्थानों पर)।

कहते हैं कि ''प्रचार करने या सिखाने की सबसे कठिन जगहों में से एक तुम्हारा घर या वह मण्डली होती है जिसमें तुम बड़े हुए हो।'' यह बात चाहे हर जगह लागू न हो पर इसमें कुछ सच्चाई अवश्य है। किसी को विशेष तौर पर लगेगा कि यह अभिव्यक्ति परमेश्वर के सिद्ध पुत्र यीशु पर लागू नहीं होगी। उन बीस से अधिक वर्षों में नासरत के लोगों के साथ उसका सम्बन्ध अवश्य ही अच्छा सम्बन्ध रहा होगा। यानी उसके अच्छे रिश्ते रहे होंगे। उसके घर लौटने से राज्य के प्रचार और मसीहा की भविष्यद्वाणियों को समझाने के लिए अच्छा माहौल बन जाना चाहिए था। परन्तु घर वाली कहावत यीशु के लिए भी सच होनी थी।

यह वचन इस बात को स्पष्ट कर देता है कि नासरत के लोगों ने उसे ठुकरा दिया। अपने ठहराव के अंत के निकट यीशु ने उनके अविश्वास पर अचम्भा किया। वहां उसके ठहरने के विषय में, 6:5 कहता है, ''वह वहाँ कोई सामर्थ्य का काम न कर सका, केवल थोड़े-से बीमारों

पर हाथ रखकर उन्हें चंगा किया।'' अपने लोगों, यानी उन लोगों के पास उसका जाना जिन्होंने उसे बड़ा होते हुए देखा था, उसके प्रति घृणा और अविश्वसनीय ढंग से उसको नष्ट कर देने के उनके प्रयास के साथ खत्म हुआ। लूका उसके पूरी तरह से और खुलकर नगर से जाने की बात दिखाता है।

निश्चय ही, परमेश्वर का पुत्र होने के कारण उसे नासरत में जाने से पहले ही पता था कि नगर के कारण लोग उसे कैसे स्वीकार करेंगे। यह सवाल खड़ा करता है कि ''वह वहां क्यों गया?'' उत्तर यह होगा कि उसका वहां जाना स्वाभाविक था क्योंकि अपने लोगों के पास वापस जाकर उनके साथ अपने मिशन की बात करना एक सामान्य शिष्टाचार था। वह उन्हें जानता था और उनसे प्यार करता था। वे उसके मांस और लहू का भाग था। वह उन्हें उसका जो वह करने वाला था, भाग बनाना चाहता था।

यीशु के प्रचार करने के इस अनुभव से हम क्या सीख सकते हैं? वह अपने मित्रों, परिवार के लोगों और नासरत अर्थात उस नगर में जिसने उसे ठुकरा देना था, अपने जानने वालों के पास कैसे गया? इस घटना से, हम देख सकते हैं कि उसने उन लोगों के साथ जो संदेश और संदेश देने वाले दोनों से घृणा करते थे, राज्य का संदेश कैसे साझा किया। जो कुछ यीशु ने किया उससे हमें ऐसी स्थिति का सामना होने पर सहायता मिल सकती है।

1. उसने उन्हें *उसे देखने और जानने का कि वह वास्तव में कौन है एक अवसर* दिया। उसने उनके बारे में पहले से विचार नहीं बनाया या उनमें से किसी को नज़रअंदाज़ नहीं किया। आरम्भ में, उसके जाने का उद्देश्य ''देहधारी'' होने का था, वह चाहता था कि वे देख लें कि वास्तव में वह कौन है। उसके इस जाने के बारे में सिवाय इसके कि वह सब्त के दिन आराधनालय में जा रहा था, और कुछ नहीं बताया गया। यह उसका दस्तूर था, नासरत में वह यही किया करता था। वह उन लोगों के पास वैसे ही गया जैसे आम तौर पर किसी भी दूसरे नगर के लोगों के पास जाता था।

लूका के अनुसार, यीशु का नासरत में जाना, प्रचार करने के उसके गलील के दौरे का भाग था (लूका 4:14-16)। नासरत में जाकर यीशु ने अपने मिशन कार्य के तरीके को बदला नहीं। वहां पर उसने उन्हीं नियमों को लागू किया जो उसने अन्य स्थानों पर लागू किए थे। उसने क्या किया? (1) वह उनके बीच गया, (2) उसने अपनी सेवकाई को पुराने नियम की भविष्यद्वाणियों के साथ मिलाया, (3) उसने अपने सुनने वालों का ध्यान उस प्रमाण की ओर दिलाया कि वह कौन है, और (4) उसने उनके प्रश्नों और चिंताओं पर बात करते हुए उनके साथ विचार विमर्श किया। उसने उसी योजना के अनुसार काम किया जिसका इस्तेमाल वह लगभग हर जगह करता था। इस प्रकार से उसने उन्हें इस बारे में सोचने के लिए अवसर दिया कि वह कौन है।

पहले तो यीशु अपने घर में नहीं रुका, बल्कि वह वहां पर चला गया जहां लोग थे। उसने उस ढंग का इस्तेमाल किया जो हर मिशनरी करता है। वह उन लोगों बीच में गया जिन्हें वह सिखाना चाहता था और उन्हें अपनी बातों, व्यवहार, सोच और रवैये को देखने दिया। उसके ढंग से उन पर प्रभाव पड़ जाना चाहिए था। क्या हम कल्पना कर सकते हैं कि यीशु के निकट होना और उसे ध्यान से देखना कैसा होगा? क्या इससे बढ़कर विश्वास दिलाने वाली कोई और बात

हो सकती है ? परन्तु नासरत के लोग उसे अपने नगर वासी से बढ़कर नहीं देख पाए थे। वे उसके परमेश्वर होने को नहीं देख पाए क्योंकि उनका ध्यान पूरी तरह से उसके मनुष्य होने पर था।

2. उसने उन्हें *अपनी सेवकाई को समझने का अवसर दिया*। उसने अपनी सेवकाई को पुराने नियम की भविष्यद्वाणियों के साथ जोड़ा। इस दूसरे ढंग को ''व्याख्या'' कहा जा सकता है। यहूदी सोच के अनुसार किसी भी बात को तब तक सच नहीं माना जा सकता जब तक इसे व्यवस्था और पुराने नियम के पवित्र शास्त्र की गवाही से साबित न किया जाए। हर शिक्षा का निर्णय व्यवस्था और भविष्यद्वक्ताओं के पूरा होने के रूप में दिया जाना आवश्यक था। सही समय पर यीशु ने इस ढंग का इस्तेमाल किया।

उदाहरण के लिए, जब सब्त का दिन आया तो वह आराधनालय में गया, जैसा कि अपनी सेवकाई के दौरान उसका दस्तूर था (लूका 4:16)। आराधनालय की सेवाओं के दौरान कोई भी यहदी पुरुष जो वहां पर इकट्ठा हुए लोगों के सामने खड़े होकर पवित्र शास्त्र में से पढ़ना चाहे, पढ़ सकता था। यीशु ने यही किया। लूका के विवरण में उसमें जो मरकुस 6:2-4 में है, जोड़ा गया है: जब यीशु खड़ा हुआ, तो उसे यशायाह की पुस्तक दी गई और उसने वह भाग पढ़ा जिसे हम यशायाह 61:1, 2 के रूप में जानते हैं। उसका कुछ भाग इस प्रकार है:

> प्रभु का आत्मा मुझ पर है, इसलिये कि उसने कंगालों को सुसमाचार सुनाने के लिये मेरा अभिषेक किया है, और मुझे इसलिये भेजा है कि बन्धुओं को छुटकारे का और अन्धों को दृष्टि पाने का ... (लूका 4:18)।

यशायाह के इस भाग को पूरा पढ़ने के बाद यीशु ने वह पुस्तक सहायक के हाथ में दे दी और बैठ गया। ''आराधनालय के सब लोगों की आंख उस पर लगी थी''; और तभी यीशु ने यह कहा, ''आज ही यह लेख तुम्हारे सामने पूरा हुआ है'' (लूका 4:20, 21)।

यीशु ने इस सब्त के दिन जो कुछ किया और कहा, उससे उसकी सेवकाई की बिल्कुल स्पष्ट व्याख्या मिल गई। एक अर्थ में वह कह रहा था, ''यदि तुम जानना चाहते हो कि सचमुच में मैं कौन हूं, तो फिर इस वचन को ध्यान से देखें; क्योंकि पुराने नियम इस भविष्यद्वाणी का पूरा होना मैं ही हूं।''

3. यीशु ने जहां तक हो सका, लोगों को *जो कुछ उसने कहा और किया उसकी पुष्टि करने का अवसर* दिया। उन्होंने उन अचम्भों के बारे में जो वह कर रहा था सुना था। उसने उन आश्चर्यकर्मों के द्वारा जो उसने किए थे। अपने जीवन और सेवकाई को साबित किया। इनसे दो काम हुए: एक तो तरस का था और दूसरा पुष्टि का। अनुग्रह के इन दोनों कामों से उसने बीमारों, दबे कुचले हुओं और दुष्टात्माओं के सताए लोगों के प्रति अपने प्रेम और लगाव को दिखाया। इसके साथ ही, इन कामों ने उसकी शिक्षाओं को विश्वसनीय बनाया और उसकी ईश्वरीय सेवकाई को मान्यता दिलवाई।

यीशु लोगों को अपनी करुणा दिखाने के लिए लालायत रहता था। यह एक कारण था कि जहां भी वह जाता वहां कई आश्चर्यकर्म करता था। ऐसा लगता है कि नासरत में वह ऐसे आश्चर्यकर्म करने को तैयार था, परन्तु उनके उसे अच्छी तरह से स्वीकार न कर पाने के कारण उसने वहां आश्चर्यकर्म नहीं किए। यीशु ने दिखावे के लिए आश्चर्यकर्म करने से इनकार कर

दिया।

साफ़ है कि नासरत में आने के थोड़ी देर बाद उसने देखा कि उसके गृहनगर के ये लोग उसके मनुष्य होने से आगे नहीं देख पाए। उन्होंने देखने से इनकार कर दिया। आराधनालय में उसने उनसे कहा, ''तुम मुझ पर यह कहावत अवश्य कहोगे कि 'हे वैद्य, अपने आप को अच्छा कर! जो कुछ हम ने सुना है कि कफरनहूम में किया गया है, उसे यहां अपने देश में भी कर''' (लूका 4:23)। यीशु ने उन्हें मांग करते हुए देखा होगा, जैसे कई बार फरीसी उससे बड़े चिह्न दिखाने को कहते थे। पृथ्वी की अपनी सेवकाई के दौरान उसने कभी ऐसी मांग को नहीं माना। यीशु का मानना था कि यदि लोग विश्वास नहीं करना चाहते तो किसी आश्चर्यकर्म से उन्हें यकीन नहीं आना था।

उसने उन्हें यह भी बताया, ''भविष्यद्वक्ता का अपने देश, को छोड़ और कहीं भी निरादर नहीं होता'' (मरकुस 6:4)। अन्य शब्दों में, उसने उन्हें जो वह सचमुच में था, उसे न देख पाने के कारण डांटा क्योंकि उन्होंने उसे एक देहाती व्यक्ति के रूप में देखा जो मामूली से बढ़ई से बढ़कर उनके लिए कुछ नहीं था। यीशु के आराधनालय में बोलने के बाद, सुनने वालों ने कहा,

> इस को ये बातें कहाँ से आ गईं? यह कौन सा ज्ञान है जो उसको दिया गया है? कैसे सामर्थ्य के काम इसके हाथों से प्रगट होते हैं? क्या यह वही बढ़ई नहीं, जो मरियम का पुत्र, और याकूब, योसेस, यहूदा, और शमौन का भाई है? क्या उसकी बहिनें यहाँ हमारे बीच में नहीं रहतीं? (मरकुस 6:2-3)।

वे उसे अपने लोगों में से एक होने से बढ़कर नहीं देख पाए। वे उसके परिवार की ओर इशारा कर सकते थे। उसके बारे में अपने निष्कर्ष निकालने के लिए वे किसी और प्रमाण को नहीं देखना चाहते थे।

उनके मन पूर्वधारणाओं से भरे होने के कारण, यीशु ने कहा कि वे अपने व्यवहार के कारण इस योग्य नहीं हैं कि वह उनके पास आए। उसने कहा:

> मैं तुम से सच कहता हूं कि एलिय्याह के दिनों में जब साढ़े तीन वर्ष तक आकाश बन्द रहा, यहां तक कि सारे देश में बड़ा अकाल पड़ा, तो इस्राएल में बहुत सी विधवाएं थीं। पर एलिय्याह उन में से किसी के पास नहीं भेजा गया, केवल सैदा के सारपत्त में एक विधवा के पास। और एलीशा भविष्यद्वक्ता के समय इस्राएल में बहुत से कोढ़ी थे, पर सीरियावासी नामान को छोड़ उन में से कोई शुद्ध नहीं किया गया (लूका 4:25-27)।

यीशु समझा रहा था कि शिक्षा और प्रमाण उन्हें दी गई थी जिनके मनों ने ऐसे प्रमाण को ग्रहण करना था। कुछ ही लोग चंगे हुए क्योंकि लोगों ने ईश्वरीय शिक्षा को सही ढंग से नहीं माना और जिन लोगों के उसे सही ढंग से मानने के उदाहरण दिए, वे गैर यहूदी थे!

4. जैसा कि हमें उम्मीद होनी थी, यीशु ने हर सुनने वाले को *उसके बारे में अपने मन में निर्णय लेने का अवसर* दिया। उसने इस बारे में कि वह कौन है अपने मन से काम करने के उनके विशेषाधिकार में दखल नहीं देना था। हम उसके काम के इस भाग को लोगों के साथ ''तालमेल'' कहेंगे। उन्हें हर बात को लेकर इस पर काम करना था। परन्तु पसन्द उनकी अपनी

होनी थी।

विश्वास करने से इनकार करके उन्होंने उसके विरुद्ध निर्णय दिया। अपने अवश्विास में बने रहकर उन्होंने यीशु को उनके बीच में अपने सर्वशक्तिमान होने को दिखाने के अवसर को ठुकरा दिया। आराधनालय में अपनी गवाही देने से, लोग उसके साथ नराज़ हो गए (लूका 4:28-30)।

यीशु ने उन्हें अब तक का सबसे बड़ा अवसर दिया, परन्तु नासरत नगर ने ''उसके विषय में ठोकर खाई'' (मरकुस 6:3)। इसके बाद, जहां तक हम जानते हैं, यीशु दोबारा कभी न लौटने के लिए नासरत से चला गया। उनकी तरह हम भी न्याय के दिन इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए खड़े होंगे कि ''अपने अवसरों का तुम ने क्या किया?'' आइए हम अपने अवसरों का इस्तेमाल उनसे बढ़कर समझदारी से करें।

नासरत के लोग पहले तो यीशु से चकित हुए, परन्तु फिर उन्होंने ठोकर खाई। 6:3 में ''ठोकर खाई'' के लिए शब्द (*सकैंडलिज़ो*) का अंग्रेजी लिप्यंत्रण scandalized (''सकैंडलाइज़्ड'') (है जिसका अर्थ ''नाराज़ हुए'' है - अनुवादक)। यह एक स्पष्ट शब्द है जो अपने आप में एक तस्वीर है। ''Scandalon'' उस फंदे का भाग था जो जानवरों को पकड़ने के लिए लगाया जाता था। जब जानवर अनजाने में कैंडलन को धकेल देता या उसमें कदम रख देता, तो फंदा अपना काम शुरू कर देता जिससे जानवर फंस जाता।

लाक्षणिक रूप में, इससे नासरत के लोगों की स्थिति का वर्णन होता है। जब लोगों ने यीशु की शिक्षाओं को धक्का मारकर उसे ठुकरा दिया, तो अविश्वास में, वे पूरी तरह से अपने ही विनाश में फंस गए। वे पकड़े गए, फंस गए और पाप के द्वारा नष्ट हो गए। यह ठुकराना उनका अपना दोष था न कि उत्तम गुरु का। वास्तव में उनके लिए कोई फंदा नहीं लगाया गया था, परन्तु यीशु को ठुकराना किसी के लिए भी जो ऐसा करता है आत्मिक रूप में घातक है।

क्या हम मसीहा के साथ के गांव में रहने, उसे बड़ा होते देखने और बढ़ई की उसकी दुकान में उसके पास जाने की आशीष की कल्पना भी कर सकते हैं? अपनी सेवकाई के दौरान जब वह मिलने के लिए वापस आया तो उसने उन लोगों को जिन्हें यह आशीष मिली थी देखने, सुनने, पुष्टि करने और निर्णय लेने का अवसर दिया; फिर भी उन्होंने उसे ठुकरा दिया और उसे पास की घटी से धक्का देना चाहा (लूका 4:29)। नये नियम में यह सबसे हैरान कर देने वाले दृश्यों में से एक है।

उन्हें शानदार अवसर मिला था। कोई इसे यूं ही हाथ से कैसे जाने दे सकता था? अब, अपने बारे में सोचें। हमें परमेश्वर का पूरा हो चुका प्रकाशन मिला है, जिसमें सुसमाचार के चारों विवरण हैं। कितना अच्छा अवसर है! क्या हम भी यीशु की आज्ञा को मानने के अवसर को जाने देंगे? यदि हम जाने देते हैं, तो हम नासरत के लोगों से भी बुरे हैं।

निष्कर्ष: यीशु की कार्यवाहियों से निष्कर्ष निकालते हुए हमें उन लोगों के पास कैसे जाना चाहिए जो हम से या सुसमाचार से घृणा करते हैं? आइए हम उन्हें यह देखने का कि हम ईमानदार हैं, संदेश को समझने, जो कुछ हमसे सुना है उसकी पुष्टि करने का कि वह सच है और इसके बारे में अपना मन बनाने का अवसर दें। यदि हमारे प्रति उनकी घृणा बहुत बढ़ जाती है तो हमें छोड़कर चले जाना चाहिए। हम उनके साथ झगड़ा न करें, बदला न लें, या बदले में उनसे घृणा न करें। यीशु चला गया, और हमें भी चले जाना चाहिए।

सम्भावना है कि यीशु नासरत में दोबारा कभी नहीं गया; परन्तु हम जानते हैं कि अंत में उसके परिवार के लोगों ने विश्वास कर लिया। प्रेरितों 1 में, यीशु के स्वर्ग पर उठा लिए जाने के बाद, उसके परिवार के लोग चेलों के साथ इकट्ठा होते थे। बाद में हम याकूब को यरूशलेम में ऐल्डर के रूप में सेवा करते देखते हैं। वास्तव में उसने यरूशलेम की सभा के अगुवे के रूप में काम किया। यीशु के एक और भाई यूदास ने सम्भवतया यहूदा की पुस्तक लिखी।

जिस प्रकार से यीशु ने नासरत के लोगों को सिखाया, हो सकता है कि बाद में उसके परिवार को उसमें विश्वास लाने के लिए बहुत देर बाद सहायता मिली हो। उनके यीशु के परमेश्वर होने को देखने के लिए, यीशु के मनुष्य होने से आगे देखना आवश्यक था। इसके लिए कुछ समय लग गया, परन्तु उन्होंने विश्वास किया और आज्ञा मानी। सम्भव है कि नगर के दूसरे लोग भी यीशु में विश्वास करने लगे। यदि हम कठिन परिस्थितियों का सामना वैसे करें जैसे यीशु ने किया, तो निश्चित रूप में हम कह सकते हैं कि हमारी कार्यवाहियों से भलाई निकलेगी।

लोगों के बीच में जाना (6:6-13)

यीशु ने अपने प्रेरितों को इस बारे में अगुआई की थी कि वह अपने मिशन के सम्बन्ध में उनको क्या करना चाहता है। उसने उस संदेश को जिसका प्रचार उन्होंने करना था, समझाकर और इसके प्रचार करने का ढंग बताकर एक प्रकार से उन्हें अच्छी तरह से बता दिया था। 6:6-13 के अनुसार उसके बाद उसने उन्हें उस सुसमाचार प्रचार के लिए जिसके लिए उसने उन्हें तैयार किया था लोगों के बीच में भेजा।

यीशु की गलील की सेवकाई में यह पहला विशेष अभियान था जिस पर यीशु ने बारह प्रेरितों को भेजा। उसने इन लोगों को अपने पास बुलाया था, उसने उन्हें कुछ समय के लिए सिखाने की स्थिति में उन्हें अपने साथ रखा था; परन्तु अब वह उन्हें अपने आप काम करने के लिए भेज रहा था। उन्होंने दूसरों को वह सिखाना था जो उन्होंने मसीह से मिली इस निजी पढ़ाई से सीखा था। यीशु के बारे में दूसरों को बताने के योग्य होने से पहले, उसके साथ समय बिताना आवश्यक है। इन प्रेरितों ने यही किया। कुछ समय अपने प्रभु के साथ बिताने के बाद, अब वे दूसरों को वह बताने के लिए तैयार थे जो उन्होंने उसके साथ रहते हुए देखा, सीखा, और उस पर ध्यान किया था।

मरकुस में उस अगुआई का विवरण है जो उनके मिशन के बारे में उन्हें मिली। मत्ती अधिक विस्तार से उन निर्देशों के बारे में बताता है कि उन्हें क्या करना था और क्या नहीं (मत्ती 10:5-42)। अपने काम के सम्बन्ध में इन शिक्षाओं में उनके बाहर जाने का ढंग (दो-दो करके); वह अधिकार जिसकी उन्हें आवश्यकता होनी थी (आश्चर्यकर्म करने की पुष्टि); उनके मिशन का दायरा (केवल यहूदियों के पास जाना; मत्ती 10:5, 6); उनके प्रचार का विषय (''स्वर्ग का राज्य''; मत्ती 10:7); साथ क्या लेना है और क्या नहीं लेना; नगरों और घरों में उनका व्यवहार; और यदि उन्हें स्वीकार नहीं किया जाता तो वे क्या करें।

इन लोगों ने बिल्कुल वही किया जो इन्हें करने को कहा गया था। हम पढ़ते हैं, ''तब उन्होंने जाकर प्रचार किया कि मन फिराओ, और बहुत सी दुष्टात्माओं को निकाला, और बहुत से बीमारों पर तेल मलकर उन्हें चंगा किया'' (मरकुस 6:12, 13)। यूहन्ना और यीशु यह प्रमुख

संदेश लेकर लोगों के पास गए, कि वे मन फिराएं क्योंकि स्वर्ग का राज्य निकट था। चंगा करते हुए, वे बीमारों पर तेल मलते थे। यह तेल दवा के लिए था या कोई रस्म थी, यह उन्हें ही दिया जाता होगा जिन्हें पूरी आत्मिक जानकारी न हो कि उन्हें परमेश्वर की ओर से चंगाई मिली है।

इन लोगों को बाहर भेजने की यीशु की कार्यवाही में, स्थानीय या विश्वव्यापी सुसमाचार के सम्बन्ध में मिशन के अपने वर्तमान दायित्वों को लागू करते हुए देखते हैं। विशेषकर प्रेरितों को उन नगरों और कस्बों में जहां वह नहीं गया था, भेजने के उसके निर्णय पर विचार करते हुए। इस सम्बन्ध में हम एक उपयुक्त प्रश्न पूछ सकते हैं कि ''यीशु ने यहां पर इस ढंग का इस्तेमाल करना क्यों चुना?''

1. पहला स्पष्ट कारण यह है कि उसने इस ढंग का इस्तेमाल इसलिए किया क्योंकि *ऐसा करना व्यावहारिक बात* थी। पलिश्तीन तुलनात्मक तौर पर छोटा इलाका है; हमें लग सकता है कि क्रूस पर चढ़ाए जाने से पहले यीशु हर भाग में गया होगा। परन्तु हमें यह समझना पड़ेगा कि वह पैदल चलता था, अधिकतर समय मौसम बहुत गर्म होता था और वह लोगों को सिखाने के लिए पर्याप्त समय मिलने के लिए हर जगह काफ़ी समय बिताना चाहता था। इसलिए उसे हर इलाके में जाने के लिए काफ़ी समय और सहायता की आवश्यकता थी।

उसके बारह पुरुषों को प्रशिक्षण देने में, जो आवश्यक प्रचार करने में उसके साथ काम कर सकें, समझदारी देखते हैं। इन पुरुषों को अच्छी तरह से तैयार किया गया था और वह उन्हें अपने प्रतिनिधि बनाकर उन्हें भेज सकता था। वास्तव में, उसने उन्हें बताया, ''जो तुम्हें ग्रहण करता है, वह मुझे ग्रहण करता है; और जो मुझे ग्रहण करता है, वह मेरे भेजनेवाले को ग्रहण करता है'' (मत्ती 10:40)।

क्या हमारे लिए यह सही ढंग है? क्या हम आज अपने काम में इस ढंग का इस्तेमाल कर सकते हैं? हमें इस तथ्य को मानना पड़ेगा कि लोग सच्चाई की खोज में हमारी सभाओं में नहीं आते। उन्हें नहीं मालूम कि हम कौन हैं या हम क्या कर रहे हैं। व्यावहारिक बात कहें, तो यदि हम चाहते हैं कि हमें दूसरों को सिखाने के अवसर मिलें, तो हमें उनके पास जाना होगा।

किसी नये इलाके में जाने पर हर मिशनरी को इस चुनौती का सामना करना पड़ता है। यदि मिशनरी को एक असाधारण परिस्थिति मिलती है जिसमें लोग उसके पास आ रहे हैं तो विशेष स्वीकृति के क्षेत्र में वह धन्य है। यह परिस्थिति हर जगह नहीं मिलती। मिशनरी को लगभग हर कहीं, बाहर जाकर सुनने वालों को ढूंढ़ना पड़ता है।

यदि लोग हमारे पास नहीं आ रहे, तो हमें उनके पास जाने का कोई तरीका ढूंढ़ना पड़ेगा। हमें वैसे ही तरीके की आवश्यकता है जैसा प्रभु ने इस्तेमाल किया। लोगों से मिलना हो सकता है कि सबसे आसान तरीका न हो, परन्तु लगता नहीं है कि कोई और तरीका हो। या तो हम जाएं या फिर बैठे रहें; यदि हम बैठे रहते हैं तो सम्भवतया हमें लोगों को सिखाने के बहुत कम अवसर मिलेंगे। हमें भी लोगों के पास जाना ही होगा क्योंकि करने के लिए यह व्यावहारिक बात है।

2. यीशु के इन प्रेरितों को लोगों में भेजने का एक और कारण यह है कि *ऐसा करना समय के अनुसार* था। उसकी सेवकाई के हर भाग को गिन लिया जाए, तो यह मुश्किल से तीन से अधिक वर्ष तक की थी। लोग कई बार सुनने को तैयार होते थे और कई बार तैयार नहीं होते थे। यीशु के समय में, किसी दूत को भेजकर या संदेश देने के लिए स्वयं जाकर बात पहुंचाई

जाती थी।

यीशु की सेवकाई हलचल पैदा करने वाला अंदोलन था। संसार कहता है, ''हमें सच्चाई चाहिए''; परन्तु जब सच्चाई को पाने का अवसर दिया जाता है, तो संसार के लोगों को पता नहीं चलता कि उन्हें यह चाहिए या नहीं। सच्चाई की मांग के अनुसार अपने जीवनों को बदलने की लोगों की कोई इच्छा नहीं है। यीशु के समय के लोग उसकी सेवकाई को तीन से अधिक वर्षों तक झेल नहीं पाए। उसके शत्रुओं का यदि वश चलता तो उन्होंने उसे पहले ही क्रूस पर चढ़ा देना था।

इसलिए यीशु जितनी जल्दी हो सके, अधिक से अधिक शिक्षा देना चाहता था। वह जब भी आश्चर्यकर्म करता, भीड़ को यह कहते हुए रोके रखना चाहता था, ''किसी से न कहना।'' लोगों के उसे आगे बढ़ने देने पर यदि वह तेजी से न निकलता, तो क्रूस ने उसे पकड़ लेना था।

समय के साथ हमारी यही समस्या है। अपने आस पास के लोगों तक पहुंचने के लिए हमारे पास बहुत समय नहीं है। हो सकता है कि वे कहीं और चले जाएं, आत्मिक बातों में उनकी दिलचस्पी कम हो जाए या उनकी मृत्यु हो जाए। समय हमेशा मुख्य कारक होता है। यीशु के साथ भी ऐसा ही था और हमारे साथ भी ऐसा ही है। हमें जाना पड़ेगा क्योंकि समय के अनुसार किए जाने वाली यही बात है।

3. यीशु ने अपने प्रेरितों को लोगों के बीच में भेजा क्योंकि ये *करने के लिए प्रभावशाली बात* थी। हमारे प्रभु ने उसके पास उपलब्ध सबसे बढ़िया ढंगों का इस्तेमाल किया। उसने अपने प्रेरितों को प्रतिदिन नहीं भेजा, बल्कि उसने उन समयों की योजना बनाई थी कि उन्हें कब भेजना है। इस बारे में वह बहुत स्पष्ट था। उसने उनके बाहर जाने के सम्बन्ध में विस्तृत निर्देश दिए। बेशक उसने उन्हें बाहर जाने के लिए कहने से पहले उनके साथ इस प्रकार के मिशन कार्य के सम्बन्ध में बात की होगी। उन्हें भेजने के समय, उसने उन्हें जाने के लिए तैयार किया था। जब वे वापस आए तो वे अपनी प्राप्तियों पर आनन्द कर सकते थे।

हमें याद रखना आवश्यक है कि सुसमाचार को बांटने का सबसे बढ़िया ढंग एक एक व्यक्ति के साथ बातचीत करना है, यानी एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति के साथ बात करना। इस प्रक्रिया का आरम्भ भावी छात्र के साथ सम्बन्ध बनाने के द्वारा होता है। ऐसा सम्बन्ध बनाने का सबसे प्रभावी ढंग लोगों के बीच में रहना है। सम्पर्क हमेशा बाइबल अध्ययन करना चाह रहे लोगों को ढूंढ़ने के लिए एक सप्ताह के प्रयास में नहीं मिलते। ये सम्पर्क हस्पताल में बीमारों को मिलने के द्वारा बन सकते थे। हम काम की जगह, बाज़ार में कहीं चलते हुए उनके साथ बात करके वचन के सीखने वालों से मिल सकते हैं।

किसी को सुसमाचार बताने का उस व्यक्ति के साथ सम्बन्ध बनाने से प्रभावी ढंग नहीं है। इसके बाद हम उसी अच्छे, सार्थक सम्बन्ध में रहते हुए सुसमाचार बता सकते हैं। हम लोगों के बीच में जाते हैं क्योंकि हम मसीह के लिए दूसरों तक पहुंचने में प्रभावशाली होना चाहते हैं।

निष्कर्ष: यीशु का ''हमारे बीच में आना'' इतना आवश्यक था कि नये नियम की पहली चार पुस्तकें हमें इसके बारे में बताने के लिए समर्पित हैं। सुसमाचार के विवरणों को पढ़कर हमें पता चलता है कि यीशु ने क्या किया; परन्तु हमें यह भी पता चलता है कि हमें क्या करना आवश्यक है। दूसरों तक पहुंचने के लिए इस्तेमाल किया गया यीशु का ढंग ही वह ढंग है जो उसके लिए दूसरों को जीतने में हमें इस्तेमाल करना आवश्यक है। निश्चय ही हम दूसरों तक

जाने के यीशु के ढंग से बेहतर नहीं कर सकते।

एक मिशनरी खतरनाक परिस्थिति में जा रहा था। उसके मित्रों ने उससे पूछा, ''तुम्हें नहीं लगता कि यहां रहकर सुरक्षित स्थानों में काम करना बेहतर होगा?'' मिशनरी ने तुरन्त उत्तर दिया, ''क्या होता यदि स्वर्गदूत यीशु को हमारे पास आने से पहले कह देते, 'यदि आप नीचे जाते हो तो वे आपको मार डालेंगे?' वह उनसे कहता 'मुझे जाना पड़ेगा। उनकी उम्मीद केवल मैं हूं।''' हां, यीशु लोगों को पृथ्वी से स्वर्ग में ले जाने के लिए स्वर्ग छोड़कर पृथ्वी पर आया। वह आया ताकि हमें उम्मीद मिल सके, और हमें इस उम्मीद को दूसरों के साथ साझा करना आवश्यक है। हमें चाहिए कि जैसे भी जा सकते हैं, जाएं। उसके नाम में जाएं, और जितने लोगों के पास जा सकते हैं, जाएं।

जब हम यीशु की सेवकाई को देखते हैं तो हमें इस तथ्य पर आश्चर्य होता है कि यीशु हमारे पास आया। उसने देहधारी होने का तरीका अपनाकर स्वर्ग को छोड़ा और हम तक आ गया। उसका मानना था कि हमें उसे देह में, हमारे बीच में चलते हुए देखने की आवश्यकता है। वह राज्य के संदेश के सार को हमारे लिए हर सम्भव आसान बनाना चाहता था।

जीवन की अनिवार्यताओं का सामना करना (6:14-16)

पूरे गलील में यीशु ने काफ़ी प्रचार करके शिक्षा दे दी थी। वह और उसके चेले प्रचार कर रहे थे कि मन फिराना चाहिए (6:6-12) और उसके संदेशों के द्वारा काफ़ी हलचल पैदा हो गई थी। इसके अलावा उन्होंने ''बहुत सी दुष्टात्माओं को निकाला, और बहुत से बीमारों पर तेल मलकर उन्हें चंगा किया'' (6:13)। प्रचार तथा आश्चर्यकर्मों से यीशु की प्रसिद्धि बढ़ रही थी और उस सब का जो वह कर रहा था प्रचार फैल रहा था।

हेरोदेस के यीशु की शिक्षा और विशेषकर उसके आश्चर्यकर्मों को सुनने पर, उसके मन में बड़ा डर बैठ गया। उसने अपने एक सेवक से कहा, ''यह यूहन्ना बपतिस्मा देनेवाला है! वह मरे हुओं में से जी उठा है, इसी लिये उससे सामर्थ्य के काम प्रगट होते हैं'' (मत्ती 14:2)। इस समय यीशु की प्रसिद्धि ''चरम'' पर थी। हर जगह हर कोई उसी की बात कर रहा था। कोई कह रहा था, ''यह एलिय्याह है''; जबकि कोई और कह रहा था, ''भविष्यद्वक्ता या भविष्यद्वक्ताओं में से किसी एक के समान है'' (मरकुस 6:15)। परन्तु जब उसकी प्रसिद्धि की खबरें हेरोदेस के पास पहुंची तो वह थरथराते और हक्के बक्के और दर्द भरे मन से यही कहता रहा, ''जिस यूहन्ना का सिर मैं ने कटवाया था, वही जी उठा है!'' (6:16)। हेरोदेस को यही बात परेशान रही थी उसने क्या किया है। नींद में वह परेशान रहता था और उसका विवेक हर समय उसे सताता रहा होगा।

हेरोदेस का सामना, ''जीवन की अनिवार्यताओं'' के साथ हो रहा था। उल्टा पड़ जाने की तरह यह सच्चाइयां बाहर जाकर फिर हमारे पास लौट आती हैं। संसार का हर व्यक्ति को इस तथ्य पर विचार करना चाहिए। इस हवाले में मिलने वाली ''जीवन की अनिवार्यताएं'' कौन सी हैं?

1. *यीशु की आवश्यकता।* हेरोदेस यीशु से मिले बिना गलील में रहकर शासन नहीं कर सकता था। पवित्र शास्त्र में से जितना हमें पता है, हेरोदेस ने वास्तव में यीशु को प्रचार करते या उपदेश देते नहीं सुना था; परन्तु ऐसा समय आना था जब उसे उसके सामने आना पड़ना था।

यीशु की सुनवाइयों के दौरान हेरोदेस यरूशलेम में था; और पिलातुस ने यीशु को उसके सामने खड़ा होने के लिए भेजने का निर्णय लिया (लूका 23:7)। पिलातुस को लग रहा था कि हेरोदेस को पता होगा कि यीशु के साथ क्या करना है, क्योंकि वह गलील का जहां यीशु ने इतना प्रचार किया था, हाकिम था।

जब यीशु को हेरोदेस के सामने लाया गया, तो इस गलीली हाकिम को उसे देखकर अच्छा लगा (लूका 23:8)। उसने चाहा कि यीशु उसके सामने कोई आश्चर्यकर्म करे, परन्तु यीशु ने कोई जवाब नहीं दिया। पूरी पूछताछ के दौरान यीशु ने एक शब्द नहीं कहा। यीशु हेरोदेस जैसे आदमी से कुछ क्यों कहे? चौथाई के हाकिम का मन ऐसा कठोर था कि परमेश्वर के पुत्र के उसके सामने खड़ा होने पर भी उसके अंदर यह सच्चाई नहीं जा सकी कि वह कौन है।

हेरोदेस यीशु से एक और बार मिलेगा। जब हेरोदेस सारी पृथ्वी के न्यायी, यीशु के सामने खड़ा होगा, तब वह उसके परमेश्वर होने और उसके अधिकार को मान लेगा। यह ईश्वरीय मुलाकात न्याय के समय होगी।

2. *सच्चाई की आवश्यकता।* स्पष्टतया हेरोदेस को सच्चाई दिलचस्प लगी जब यूहन्ना बपतिस्मा देने वाले ने कई बार उसे प्रचार किया। जब उसने यूहन्ना को कैद किया हुआ था तो उसने उसे सुरक्षित रखा था और कई बार उसे बुलाकर उससे सुनता था (मरकुस 6:20)। शायद मन ही मन में वह सच्चाई को पसंद करता था, परन्तु उसने इसे कभी इतनी गम्भीरता से नहीं लिया कि अपने आस-पास की बुराई को दूर कर सके। यही कारण है कि उसने सच्चाई को पूरी तरह से कभी माना नहीं।

जब सलोमी ने हेरोदेस से यूहन्ना का सिर काटने को कहा तो वह मान गया (6:25, 26), वह इस अनन्त सच्चाई को नकार रहा था जिसे परमेश्वर ने भेजा था। परन्तु सच्चाई कोई ऐसी बात नहीं है कि जितनी हमें पसंद हो उतनी हम मान लें। यह हमेशा से है, आकाश और पृथ्वी से भी मज़बूत है। या तो हम इसे मान कर इसके द्वारा चलें, या फिर अंत में इसके द्वारा हमें अनन्तकाल के लिए दण्ड दिया जाएगा।

हेरोदेस सच्चाई के प्रति सुन्न से सुन्न होता जा रहा था, जब तक अंत में उसका मन पत्थर के जैसा न बन गया। अंत के दिन, वह अपने आपको इसके द्वारा दोषी ठहराते हुए पाएगा। सच्चाई अटल है। जीवन और अनन्तकाल की सब बातों पर यह सवाल होगा ''हमने सच्चाई के साथ क्या किया?'' हम सब को सच्चाई का सामना करना पड़ेगा; हम इसके साथ टकराने वाले हैं।

3. *पाप की आवश्यकता।* एक न एक दिन हमें अपने अपराधों की कीमत चुकानी पड़ेगी। पाप यूं ही नहीं चला जाता। जब हम पाप करते हैं, तो हमारे अपराध हमारे जीवनों में दोष ले आते हैं। वह दोष हमारे व्यक्तित्व और अस्तित्व में फंस जाता है। संसार की कोई मानवीय शक्ति इसे हमसे दूर नहीं कर सकती।

हेरोदेस एक शक्तिशाली और प्रभावशाली व्यक्ति था। उसका मानना था कि वह जैसे चाहे पाप कर सकता है और अपनी बुराई का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। उसने अपनी पत्नी को अरितास की पुत्री थी, मस्ती में आकर तलाक दे दिया और अपने सौतेले भाई की पत्नी को रख लिया (6:17)। उसने हेरोदियास को चुना क्योंकि वह उसे अच्छी लगी और उसका व्यक्तित्व उसे उससे अधिक पसन्द था। उसे लगा कि वह यूहन्ना बपतिस्मा देने वाले को केवल इसलिए

मार सकता है क्योंकि उसे उसको मारने को कहा गया, शायद इस बात से अनजान कि उसके पापों ने एक दिन उसे ढूंढ़ लेना था।

पाप हमें छुड़ा नहीं सकता। यह इतना विनाशकारी है कि कोई सही-सही इसका मूल्यांकन नहीं कर सकता। जब हमारे जीवनों के इकट्ठा हुए पाप हमारे पाप जमा हो जाएंगे तो हमें उनकी कीमत चुकानी पड़ेगी; और ''पाप की मज़दूरी मृत्यु है'' (रोमियों 6:23)। इस नियम को अपवाद बनाने का केवल एक ही तरीका है, परमेश्वर के अनुग्रह के अधीन आ जाना। यह अनुग्रह मसीह के द्वारा मिलता है जो हमारे लिए मरा। अपने दोष का बोझ हम या तो यीशु को उठाने देंगे या हम इसे स्वयं उठाएंगे। हेरोदेस ने मसीह से मुंह फेर लिया और अपने दोष का बोझ अपने ही प्राण पर लाद दिया; और इसका अर्थ उसके लिए और उन सबके लिए जो ऐसा ही करते हैं आएंगे अनन्त मृत्यु होगा।

निष्कर्ष: सब लोग यीशु, सच्चाई और पाप के द्वारा प्रस्तुत की गई इन तीन अनिवार्यताओं के सामने आएंगे। हमारे पास उनसे बचने का कोई तरीका नहीं है।

अंत में हमारा सामना यीशु से होगा। हमें इस जीवन में उससे मिलने का अवसर मिला है। हम विश्वास और आज्ञापालन में उसकी ओर मुड़कर अनन्त जीवन में उसके साथ चल सकते हैं। परन्तु यदि हम उससे बचते हैं, उससे मुंह फेरते हैं, या उसे नकारते हैं, तो परमेश्वर के समय में, हम न्याय के समय उससे मिलेंगे (2 कुरि. 5:10)।

समय आ रहा है जब हमें परमेश्वर की सच्चाई का सामना करना पड़ेगा। यीशु ने कहा, ''जो मुझे तुच्छ जानता है और मेरी बातें ग्रहण नहीं करता है उसको दोषी ठहरानेवाला तो एक है: अर्थात् जो वचन मैं ने कहा है, वही पिछले दिन में उसे दोषी ठहराएगा'' (यूहन्ना 12:48)। आज नहीं तो कल, हमें उस सच्चाई का सामना करना पड़ेगा जो परमेश्वर ने हमें बाइबल में दी है।

अंत में, हमें भी अपने पापों का सामना करना पड़ेगा। पूरे अनन्तकाल के लिए उनका दण्ड चुकाने से बचने का हमारे पास एकमात्र रास्ता यह मानते हुए कि हम पापी हैं और अपने दोष को पूरी तरह से शुद्ध करने के लिए मसीह के पास लाकर अब उनका सामना करना है। इस निर्णय को लेने और वफ़ादारी और आज्ञाकारिता से इसमें बने रहने से हमें भरपूर और आनन्द से भरा जीवन मिलेगा।

परमेश्वर के वचन को दिए जाने वाले जवाब (6:17-20)

अब तक के सबसे बड़े प्रश्नों में एक को इस प्रकार से कहा जा सकता है, ''हम परमेश्वर के वचन को कैसे ग्रहण करेंगे?'' यह कठिन है क्योंकि पवित्र आत्मा हमारे ऊपर और हमारे अंदर उसी वचन के द्वारा काम करता है। वचन ''आत्मा की तलवार'' है (इफि. 6:17)। हम पढ़ते हैं, ''सम्पूर्ण पवित्रशास्त्र परमेश्वर की प्रेरणा से रचा गया है और उपदेश, और समझाने, और सुधारने, और धार्मिकता की शिक्षा के लिए लाभदायक है। ताकि परमेश्वर का जन सिद्ध बने, और हर एक भले काम के लिए तत्पर हो जाए'' (2 तीम. 3:16, 17)।

यह तथ्य हम से परमेश्वर के वचन की जिम्मेदारी को मान लेने को कहते हैं। पवित्र शास्त्र को हम वैसे नहीं देख सकते जैसे हम दूसरी और पुस्तकों को देखते हैं। बाइबल परमेश्वर की ओर से मिली है जो कि उसकी ओर से हमें दिया गया ईश्वरीय प्रकाशन है; इसलिए यह हमारी

आत्मिक मार्गदर्शक है। यह हमारे मनों को परमेश्वर की इच्छा को जानने में अगुआई करती है और हमें परमेश्वर की योजना के भाग के रूप में जीने की प्रेरणा देती है। यीशु के चेलों के रूप में हमें परमेश्वर के वचन का अध्ययन करने और ईमानदारी से इसे अपने जीवनों में ग्रहण करके, अपने आपको देना आवश्यक है।

प्रभावशाली ढंग से परमेश्वर के वचन के पथभ्रष्ट विचारों को प्रदर्शित करने की बड़ी त्रासदियां हुई हैं। एक उदाहरण मरकुस 6:17-20 में देखने को मिलता है। इन चारों आायतों में परमेश्वर की शिक्षा के प्रति कई सबसे महत्वपूर्ण व्यवहार शामिल हैं। ये व्यवहार बढ़ते क्रम में मिलते हैं।

1. हेरोदेस की पत्नी हेरोदियास ने परमेश्वर के वचन के प्रति उस पहले व्यवहार को दिखाया जिस पर हमें विचार करना आवश्यक है। उसकी सोच के साथ आरम्भ करते हुए हम सूची में नीचे से आरम्भ कर रहे हैं। वह वास्तव में *सच्चाई से घृणा करती* थी।

हेरोदेस ने अपने सौतेले भाई की पत्नी हेरोदियास से विवाह करने के लिए अपनी पत्नी को तलाक दे दिया था। यूहन्ना को हेरोदेस से बात करने या प्रचार करने का जब भी अवसर मिलता, वह उसे उसके किए के लिए डांट लगाता: ''अपने भाई की पत्नी को रखना तुझे उचित नहीं'' (6:18)।

जब हेरोदियास ने सुना कि यूहन्ना ने यह कहा है तो वह आपे से बाहर हो गई। उसने ज़िद की कि हेरोदेस उसी समय उसे मरवा डाले। यूहन्ना को नबी मानने के अपने विचार से संयम से भरे हेरोदेस ने हेरोदियास की मांग को मानने से इनकार करते हुए, यूहन्ना का बचाव किया। हेरोदियास एक ऐसी स्त्री थी जो या तो उसी समय अपनी मर्जी चलवाती थी या तब तक चैन से नहीं बैठती थी जब तक उसकी मर्जी पूरी न हो जाती। उसने बेशक यह सोचते हुए कि ''एक दिन, मैं इसे ठीक कर दूंगी!'' यूहन्ना के विरुद्ध अपने मन में क्रोध रखा। उसके मन में सच्चाई के लिए कोई प्रेम नहीं था।

जब किसी को संदेश पसंद न हो तो संदेश देने वाले पर हमला करके ऐसा ही उत्तर दिया जाता है। आज कुछ लोग बाइबल के साथ यही मूर्खतापूर्ण तरीका अपनाते हैं। यह दर्पण को तोड़ने जैसा है क्योंकि हमें पसंद नहीं है कि हम इसमें कैसे दिखते हैं। परमेश्वर के पवित्र वचन को इस प्रकार के जवाब को कौन सही ठहरा सकता है ? केवल हेरोदियास के जैसा कोई, जिसका कुटिल मन घृणा से भरा हुआ हो, ऐसा कर सकता है।

2. हेरोदेस ने ईश्वरीय प्रकाशन के प्रति अगला व्यवहार दिखाया। वह *सच्चाई से परेशान* था। स्पष्टतया परमेश्वर के नबी के रूप में यूहन्ना में उसका थोड़ा बहुत विश्वास था। वचन कहता है कि वह ''उसकी बातें सुनकर बहुत घबराता था'' (6:20)। हेरोदेस को यूहन्ना द्वारा दिए जाने वाले संदेश की पूरी समझ नहीं थी; परन्तु उसे इतनी समझ थी कि वह उसकी बातें सुनकर परेशान हो जाता था।

क्या आज लोग ऐसे ही हैं ? सच तो यह है कि हमारे आस-पास बहुत से लोग होंगे जो ऐसी ही दुविधा में हैं। पवित्र शास्त्र से जो थोड़ा बहुत उन्होंने सुना है उससे वह उलझन में पड़ गए हैं। उन्हें बाइबल का थोड़ा बहुत ज्ञान है परन्तु यह पता नहीं है कि परमेश्वर की इच्छा से मेल खाने के लिए अपने जीवनों को मिलाने के लिए आवश्यक कार्यवाहियां करने में कैसे अगुआई

मिल सकती हैं।

उन्हें हमारा जवाब लगाव, सहायता करने वाले और तरस होना चाहिए। यदि हमें अवसर मिल सके तो हमें चाहिए कि उन्हें पवित्र शास्त्र का संदेश और अच्छी तरह से समझाते हुए उनके साथ अध्ययन करें। हो सकता है कि यह उलझन दूर हो जाए और इससे वे समर्पित हो सकें।

3. हेरोदेस ने यूहन्ना और परमेश्वर के संदेश के प्रति एक और व्यवहार दिखाया। वह *सच्चाई से डरता था*। हेरोदियास ने चाहे यह चाहा कि हेरोदेस यूहन्ना को मरवा डाले, परन्तु उसने इनकार कर दिया क्योंकि वह यूहन्ना बपतिस्मा देने वाले को परमेश्वर का जन मानता था: ''क्योंकि हेरोदेस यूहन्ना को धर्मी और पवित्र पुरुष जानकर उससे डरता था, और उसे बचाए रखता था'' (6:20)।

हेरोदेस के भय के सम्भवतया दो स्तर थे। वह आदमी से डरता था क्योंकि उसके पीछे बहुत लोग थे। यदि हेरोदेस यूहन्ना से पंगा लेता तो वह दंगे भड़काने का दोषी हो सकता था। यह विचार उसे बहुत परेशान करता होगा। दूसरा, उसका भय यूहन्ना की कही बातों के कारण होगा। यूहन्ना उससे परमेश्वर और परमेश्वर के न्याय की बातें करता था। यह भय वैसे ही होगा जो फेलिक्स के मन में था: ''जब वह धर्म, और संयम, और आनेवाले न्याय की चर्चा करता था, तो फेलिक्स ने भयभीत होकर उत्तर दिया, 'अभी तो जा; अवसर पाकर मैं तुझे फिर बुलाऊंगा''' (प्रेरितों 24:25)। बाद वाला भय पवित्र वचन के लिए भक्ति या आदर के व्यवहार जैसा है। हेरोदेस की चिंता अंधविश्वास जैसी अधिक होगी, परन्तु इससे हेरोदेस को कुछ समय के लिए यूहन्ना की जान बचाने की प्रेरणा मिली।

हमारा काम उन लोगों को जिनमें ऐसा व्यवहार पाया जाता है, उनके मन में परमेश्वर के वचन के लिए सच्ची श्रद्धा डालने में उनकी सहायता करके भय के उच्च स्तर तक ले जाना है। ''बुद्धि का मूल यहोवा का भय है'' (भजन 111:10; नीति. 9:10)। भक्ति परमेश्वर के वचन के लिए ठोस आधार बना देती है। यदि हम उन लोगों के साथ अध्ययन करते हैं जिनमें परमेश्वर का भय है तो हम उन्हें उनके जीवनों के लिए उसकी इच्छा की अच्छी समझ में ले जा सकते हैं। वास्तविक आज्ञापालन भक्ति से आता है।

4. हेरोदेस ने परमेश्वर के वचन के प्रति एक और रुख़ दिखाया। स्पष्टतया उसने दूर से *सच्चाई को सराहा*। हेरोदेस ''आनन्द से [यूहन्ना] को सुनता था'' (6:20)। शायद वह आत्मिक रूप में प्यासा होने से बढ़कर जिज्ञासु था, परन्तु उसने कुछ दिलचस्पी दिखाई।

यदि हमें किसी व्यक्ति में आत्मिक दिलचस्पी के निष्क्रिय होने का कोई चिह्न दिखाई दें, तो हमें चाहिए कि हम इस पर जल्दी ध्यान दें। यूहन्ना ने यही किया। उसने परमेश्वर की इच्छा को मानने के बारे में हेरोदेस से बात करने के हर अवसर का लाभ उठाया। हो सकता है कि हेरोदेस ने जोड़ने के लिए बहुत कुछ न दिया हो परन्तु यह हेरोदियास के साथ ''कुछ न'' जोड़ने से बेहतर था।

5. यूहन्ना बपतिस्मा देने वाले ने वचन के प्रति अगला रुख़ दिखाया। कितना अच्छा रुख़ था। उसने *सच्चाई से प्रेम किया* और प्रचार करने और परमेश्वर के लिए जीने में अपनी जान लगा दी। यही रुख़ हम में होना आवश्यक है और होना चाहिए।

क्या हेरोदेस को वचन सुनाते यूहन्ना को मालूम था कि उसकी जान खतरे में है? सम्भवतया।

मत्ती 11 यह संकेत देता हुआ प्रतीत होता है कि जब यीशु ने वह नहीं किया जो यहूदी लोग उम्मीद कर रहे थे कि मसीहा करेगा, तो यूहन्ना परेशान या निराश हुआ। हो सकता है कि यीशु की समय-सारिणी और गतिविधियां यूहन्ना की समझ के साथ मेल न खाती हों, परन्तु उसने यूहन्ना को यह पुष्टि और स्पष्ट करने के लिए संदेश दे दिया कि यूहन्ना मसीहा का विश्वासी हरकारा है (मत्ती 11:4-6)। उसने रूखा नबी होने के लिए, जो परमेश्वर की इच्छा में अपना सब कुछ दे रहा था, यूहन्ना को शाबाशी दी। यीशु ने कहा, ''मैं तुम से सच कहता हूं कि जो स्त्रियों से जन्मे हैं, उनमें से यूहन्ना बपतिस्मा देनेवाले से कोई बड़ा नहीं हुआ'' (मत्ती 11:11)।

निष्कर्ष: सच्चाई से घृणा करने से, सच्चाई पर परेशान होने तक, सच्चाई से भयभीत होने तक, दूर से सच्चाई को सराहने तक और अंत में सच्चाई के लिए प्रेम करने से अपनी जान देने तक के परमेश्वर के वचन के प्रति बुरे से बुरे से अच्छे से अच्छे रुखों तक हो आए हैं। वचन से इनमें से केवल एक रुख़ वचन में से जीवन दिया सकता है। यूहन्ना ने परमेश्वर की इच्छा का आदर किया और उसे माना।

कोई व्यक्ति सच्चाई के प्रति अपनी लगन को कई प्रकार से दिखा सकता है। बालक शमूएल ने कहा, ''कह, क्योंकि तेरा दास सुन रहा है'' (1 शमूएल 3:10)। मीकायाह[67] ने यह जानते हुए कि सच्चाई का साथ देने के लिए उसे जेल में डाल दिया जाएगा और रोटी और पानी दिया जाएगा, अहाब से कहा, ''यहोवा के जीवन की शपथ, जो कुछ मेरा परमेश्वर कहे वही मैं करूंगा'' (2 इतिहास 18:13)। पौलुस ने जेल में से लिखा, ''वचन का प्रचार कर समय और असमय तैयार रह'' (2 तीम. 4:2)। मसीही लोगों के रूप में हम से कहा गया है, ''वचन पर चलने वाले बनो, और केवल सुनने वाले ही नहीं जो अपने आपको धोखा देते हैं'' (याकूब 1:22)।

हमें मसीह में परमेश्वर की सच्चाई का आज्ञापालन ही लाता है और आज्ञापालन ही हमें मसीह में बनाए रखता है। हम पिता और पुत्र में रहना चाहते हैं और इसके लिए आज्ञा मानने वाला जीवन आवश्यक है। ''जो कोई मसीह की शिक्षा से आगे बढ़ जाता है, और मसीह की शिक्षा में बना नहीं रहता, उसके पास परमेश्वर नहीं; जो कोई उसकी शिक्षा में स्थिर रहता है, उसके पास पिता भी है, और पुत्र भी'' (2 यूहन्ना 9)। हमारे लिए वचन के पास आना, वचन में बने रहना और अंत तक वचन को पकड़े रखना आवश्यक है।

मन की सबसे बुरी यात्रा (6:21-29)

हर किसी के लिए सबसे आवश्यक कहानी उसके अपने मन की कहानी है। ''जैसा [कोई] अपने मन में विचार करता है वैसा वह आप है'' (नीति. 23:7)। यदि हम अपने मनों को सही ढंग से नहीं रखते हैं तो वे ''बुरे विचारों, हत्या, परस्त्रीगमन, व्यभिचार, चोरी, झूठी गवाही और निन्दा मन'' में फंस जाएंगे (मत्ती 15:19)।

मूसा, पौलुस, और मरकुस जैसे लोगों के मन की यात्राओं का अध्ययन करना एक बड़ा अवसर होगा। परन्तु मरकुस 6:21-29 में हम उस यात्रा को देखते हैं जो हेरोदेस के मन ने बुरा मन बनने में की, जो संसार के लिए कुछ अच्छा नहीं दे सकता था और उसे अनन्त जीवन की कोई आशा नहीं थी।

आइए उन कुछ चरणों को ध्यान से देखते हैं जिनमें से हेरोदेस का मन गुज़रा।

1. पहले तो, हेरोदेस का *दिलचस्पी लेने वाला मन* था। वहां से आरम्भ करते हुए जहां से उसका जीवन यूहन्ना बपतिस्मा देने वाले के जीवन के साथ टकराया, हम देखते हैं कि वह यूहन्ना में कुछ कुछ दिलचस्पी लेता था: ''क्योंकि हेरोदेस यूहन्ना को धर्मी और पवित्र पुरुष जानकर उससे डरता था, ... और उसकी बातें सुनकर बहुत घबराता था, पर आनन्द से सुनता था'' (मरकुस 6:20)।

ऐसा लगता है कि हेरोदेस यूहन्ना को परमेश्वर का भक्त मानते हुए उसका आदर करता था। वह यूहन्ना के चरित्र से इतना प्रभावित था कि वो यूहन्ना को मरवा डालने के हेरोदियास के प्रयासों से उसकी रक्षा करता था। वास्तव में उसे यूहन्ना को बोलते सुनना अच्छा लगता था। परन्तु उसके संदेशों से हेरोदेसों का सिर ऐसे सवालों से चकराने लगा जिनका वह उत्तर नहीं दे सकता था।

हेरोदेस के मन में भला करने की क्षमता होगी परन्तु उसके माहौल से इसे आसानी से गलत दिशा में धकेला जा सकता था। यह मन किनारे पर था और हेरोदेस ने इसका मार्ग तय करने के लिए बाहरी प्रभावों को आने दिया।

2. दिए गए अगले दृश्य में, उसका *मन वासना से भरा* था। उसने अपनी पत्नी को तलाक देकर हेरोदियास से विवाह कर लिया था। इस तथ्य से उसके जीवन में बड़ा अंतर आया होगा। उसके प्रभाव के कारण उसने यूहन्ना को गिरफ्तार करके जेल में डाल दिया था। यूहन्ना ने हेरोदेस को बताया था कि हेरोदियास के साथ उसका विवाह अनुचित था। हेरोदियास ने जब यह सुना तो उसने यूहन्ना का मरा मुंह देखने की शपथ खा ली। स्पष्टतया वह यूहन्ना की हत्या के लिए हेरोदेस को तंग करती रहती थी, परन्तु वह इनकार कर देता था क्योंकि वह नबी का बड़ा सम्मान करता था।

मरकुस 6:21 कहता है कि ''ठीक अवसर आया।'' प्रधान, सेनापति और गलील के बड़े लोग हेरोदेस का जन्मदिन मनाने के लिए दावत पर इकट्ठा हुए थे। कई बार किसी संकट से यह पता चल जाता है कि किसी का मन कितना नरम है। कुछ भड़काऊ नाच करने वाली लड़कियों ने पार्टी पर आए पुरुषों का मनोरंजन किया; जिसमें ऐसा लगता है कि हेरोदियास की बेटी सलोमी का नाच सबसे ऊपर था। यह नाच अश्लील और लच्चर हो सकता है। इस नाच के दौरान हेरोदेस के मन की बात बाहर आ गई। वचन कहता है कि उसने:

> हेरोदेस को और उसके साथ बैठनेवालों को प्रसन्न किया। तब राजा ने लड़की से कहा, ''तू जो चाहे मुझ से माँग मैं तुझे दूँगा।'' और उससे शपथ खाई, ''मैं अपने आधे राज्य तक जो कुछ तू मुझ से माँगेगी मैं तुझे दूँगा'' (6:22, 23)।

हेरोदेस का मन निश्चित रूप में गलत दिशा में चला गया था। यूहन्ना के संदेश को मानने के निकट जाने के बजाय, यह बुराई के मलकुण्ड की हालत में डूब गया था। ऐसी परिस्थिति में, अपने आस पास के इन लोगों के साथ आसानी से प्रभावित हुआ हेरोदेस का मन पाप के अंधकार में डूब गया। हेरोदेस ने वासना के सामने हार मान ली और उसके लिए इससे बाहर निकलना कठिन होना था।

3. उसका मन *दुष्ट मन* बन गया। सलोमी से जो चाहे मांगने के लिए कहे जाने के बाद, वह अपनी दुष्ट मां के पास भागी और उससे सलाह मांगते हुए कहने लगी, ''मैं क्या मांगूं?'' हेरोदियास ने घटनाओं की इस शृंखला की पहले से योजना बना ली होगी जो उसकी योजना के अनुसार धीरे-धीरे पूरी हो रही थीं। एक अर्थ में उसने अपने बेटी से कहा, ''हेरोदेस से कह कि वह तुझे थाल में रखकर यूहन्ना का सिर दे'' (देखें 6:24)। हेरोदियास की नीचता उसकी बेटी सलोमी में दिखाई देती है। घृणा से भरी हेरोदियास ने यूहन्ना के सिर की कीमत हेरोदेस के आधे राज्य से बढ़कर मानी।

सलोमी भागकर हेरोदेस के पास वापस गई और उसने यह घिनौनी विनती कर दी। पागलपन से भरी उसकी अपील के हेरोदेस के जवाब से पता चलता है कि उसका मन कैसा हो चुका था। ''तब राजा बहुत उदास हुआ, परन्तु अपनी शपथ के कारण और साथ बैठनेवालों के कारण उसे टालना न चाहा'' (6:26)। इस बात से अनजान कि गलत काम करने के लिए दिया गया कोई भी वचन नैतिक तौर पर कभी भी बाध्य नहीं हो सकता, इस भ्रष्ट राजा को लगा कि उसे अपनी शपथ को पूरा करना आवश्यक है। उसके लिए ऐसी शपथ खाना गलत था, और उसके लिए ऐसी शपथ को पूरा करना भी गलत था। वचन आगे कहता है:

> अत: राजा ने तुरन्त एक सिपाही को आज्ञा देकर भेजा कि उसका सिर काट लाए। उसने जेलखाने में जाकर उसका सिर काटा, और एक थाल में रखकर लाया और लड़की को दिया, और लड़की ने अपनी माँ को दिया (6:27, 28)।

हेरोदेस किसी शासक की गरिमा वाला काम नहीं कर रहा था। नहीं, वह किसी सभ्य मनुष्य की तरह भी व्यवहार नहीं कर रहा था। इस विवरण में, यूहन्ना एक प्रतिष्ठित मनुष्य था, जिसने संसार को धार्मिकता और सच्चाई में ढालने के लिए जीवन बिताया था।

4. हेरोदेस के मन का चौथा विचार यह दिखाता है कि उसका *मन कठोर* था। जब हेरोदेस ने यूहन्ना की हत्या की तो उसने अपनी आत्मा की भी हत्या कर दी। उसने यूहन्ना को स्वर्गलोक में भेज दिया परन्तु खुद को दुर्दशा और दोष का दण्ड दिया। क्या हेरोदेस मन फिरा सकता था? हां, वह मन फिरा सकता था। परन्तु यह निर्णय लेकर उसने अपने लिए मार्ग तय कर लिया और वहां पर पहुंच गया जहां से लौटा नहीं जा सकता था।

किसी को अपने विवेक को हल्के से नहीं लेना चाहिए, क्योंकि विवेक इतना कठोर हो सकता है कि उसकी मरम्मत नहीं हो सकती। हेरोदेस ने अपने मन को सुन्दरता और वासना से हत्या करने तक जाने दिया। शायद इसके बाद जीवन भर उसे इस बात का दु:ख और पछतावा रहा। उसके मन ने वैसा नहीं रहना था जैसा वह पहले था। परमेश्वर तक अपने मार्ग को ढूंढ़ने के लिए जितना बढ़िया अवसर उसे यूहन्ना के साथ बातचीत के दौरान मिला था वैसा समय कभी दोबारा नहीं मिलना था।

निष्कर्ष: हेरोदेस की अगली स्पष्ट तस्वीर लूका 23 में यीशु की सुनवाइयों के सम्बन्ध में दी गई है। यीशु फसह मनाने के लिए यरूशलेम में था। जब पिलातुस को पता चला कि हेरोदेस नगर में है, तो उसने यह सोचकर कि उसे पता होगा कि यीशु के साथ क्या करना है, यीशु को उसके पास भेज दिया। टीकाकारों ने इस पूछताछ को पूरी रोमी सुनवाई बताया है।

लूका ने लिखा है कि इस मुलाकात में क्या हुआ:

> हेरोदेस यीशु को देखकर बहुत ही प्रसन्न हुआ, क्योंकि वह बहुत दिनों से उस को देखना चाहता था; इसलिये कि उसके विषय में सुना था, और उससे कुछ चिन्ह देखने की आशा रखता था। वह उससे बहुत सी बातें पूछता रहा, पर उस ने उस को कुछ भी उत्तर न दिया (लूका 23:8, 9)।

यीशु को उसके लिए कोई चिह्न दिखाने के लिए मनाने के इस प्रयास के बाद हेरोदेस ने उसे ठट्ठा उड़ाए जाने के लिए सिपाहियों को सौंप दिया। सिपाहियों ने उसे तंग किया और उसका अपमान करते हुए उसके साथ व्यवहार किया। यीशु को राजसी वस्त्र पहनाने के बाद, हेरोदेस ने उसे पिलातुस के पास वापस भेज दिया (लूका 23:11)।

यीशु को सुनने और उद्धार के बारे में जानने का हेरोदेस को कितना बढ़िया अवसर दिया गया था! परन्तु यह गलीली राजा इतना भ्रष्ट था और उसका मन इतना कठोर था कि उसने यीशु से केवल कोई चिह्न दिखाने के लिए ही कहा। हेरोदेस ने यीशु के साथ बात करने के इस अनुभव के साथ ऐसा व्यवहार किया जैसे वह किसी सर्कस में जा रहा हो। आत्मिक बातों के लिए हेरोदेस का मन सदा के लिए मर गया लगता है। अपनी सेवकाई में पहले, एक बार यीशु ने कहा था, ''... जो कोई पवित्र आत्मा के विरुद्ध निन्दा करे, वह कभी भी क्षमा न किया जाएगा: वरन् वह अनन्त पाप का अपराधी ठहरता है'' (मरकुस 3:28, 29)।

हेरोदेस ने मन की यात्रा की थी और वह पत्थर के मन के साथ अंत तक पहुंच गया था। उसका मन दिलचस्पी लेने वाला होने से वासना से भरा, दुष्ट और अंत में कठोर हो गया। जब यीशु हेरोदेस के सामने खड़ा था उसने उससे कुछ नहीं कहा; क्योंकि जगत के उद्धारकर्त्ता यीशु के पास कठोर मन के लिए कहने को कुछ नहीं है। त्रासदी यह है कि कठोर, परमेश्वर की निंदा करने वाले मन को क्षमा नहीं किया जा सकता।

हम सब भी मन की यात्रा पर हैं। दिन प्रतिदिन हम अपने मनों की खेती कर रहे हैं। हम उन्हें आज्ञा मानने वाले मनों से परमेश्वर की इच्छा या स्वार्थी मनों में अर्थात बुरे मनों में बदल रहे हैं, जो परमेश्वर या मनुष्य के किसी काम के नहीं हैं। हम कैसे मन बना रहे हैं?

''विश्राम'' का अर्थ (6:30-44)

दूसरों की सेवा करने के अपने काम में, यीशु आम तौर पर सुबह से लेकर शाम तक व्यस्त रहता था। काम करने के उसके औसत दिन लम्बे और थका देने वाले होते होंगे। मरकुस ने उन दो समयों का उल्लेख किया है जब उसके पास आने वालों की सहायता करने में वह और उसके चेले इतना अधिक खोए हुए थे कि उनके पास लोगों से बचकर, खाना खाने के लिए समय नहीं था (3:20; 6:31)।

परमेश्वरत्व में दूसरा अर्थात यीशु हमारे जैसा बनने के लिए, देह में आ गया, और उसमें मनुष्य होने के सारे गुण थे। वह हमारे साथ बिल्कुल एक था। जब उसका हाथ कट जाता तो उसमें से लहू बहता था। एक अर्थ में, वह हमारी समझ से कुछ बाहर था, जो एक ही व्यक्ति तत्व और देह में परमेश्वर और मनुष्य का सम्पूर्ण मेल था। हमारे लिए यह देहधारी होना अर्थात

परमेश्वर का हमारे पास देह में आना, हमारी समझ से बिल्कुल बाहर है। हमारे लिए यह एक तर्कसंगत विरोधाभास है; परन्तु जो भी हो, है यह सच।

सुसमाचार के विवरणों में, कई बार उसके परमेश्वर होने का ज़ोर दिया गया है, जैसे रूपांतर के समय; और अन्य समयों पर उसके मनुष्य होने को प्रमुखता से दिखाया गया है, जैसे उसकी परीक्षाओं के समय। वह पृथ्वी पर पमरेश्वर-मनुष्य बनकर रहा जिस लिए हमें नये नियम में इन दोनो स्वभावों के बीच आगे पीछे की बनावट को देखने की उम्मीद हो सकती है।

6:30-32 में हमारे सामने उसके मनुष्य होने की बात आती है। यीशु लोगों के साथ काम करके थक गया था। भावनात्मक रूप में और शारीरिक रूप में थका होने कारण, उसे आराम की ज़रूत थी। हमारी देहों की तरह, यीशु की देह को खाने, सुस्ताने और सोने से ताज़गी और फिर से शक्ति की आवश्यकता होती थी।

यीशु के चेलों को, जो अभी-अभी उस पहले अभियान से लौटे थे, जिस पर उनके प्रभु ने उन्हें भेजा था, विश्राम और विचार के लिए समय चाहिए था। यीशु ने उन्हें यह अगुआई दी: ''तुम आप अलग किसी एकांत स्थान पर चलकर थोड़ा विश्राम करो'' (6:31)। अपनी ईश्वरीय समझ में, यीशु ने मानवीय शरीर और आत्मा की सीमाओं को स्वीकार किया। कई बार अत्यधिक काम करना मुश्किल होता है, परन्तु आम तौर पर हमें बदल बदलकर काम करना चाहिए और बीच बीच में आराम कर लेना चाहिए। स्वस्थ्य रहने के लिए यह आवश्यक है कि उस सेवा के लिए जिसे करने के लिए हम समर्पित हैं, हम अपने मनों और शरीरों को तैयार करने के लिए समय दें।

यह विवरण इस बात का संकेत देता है कि प्रेरित वही करते थे जो यीशु उन्हें करने के लिए बताता था। यीशु ने प्रेरितों के लिए किस प्रकार के विश्राम की सिफारिश की? हमारे लिए वह किस प्रकार के विश्राम करने को कहेगा?

1. प्रेरितों ने *यीशु को वह बताने में* कुछ समय दिया जो उन्होंने अपने अभियान के दौरान किया और पाया था। मरकुस 6:30 कहता है, ''प्रेरितों ने यीशु के पास इकट्ठे होकर, जो कुछ उन्होंने किया और सिखाया था, सब उसको बताया।'' ये लोग कुछ देर तक यीशु से दूर रहे थे, और जो हुआ था वे उसे बताना चाहते थे। वे सब ''इकट्ठे'' हुए। पहले तो उन्होंने चाहा होगा कि जो कुछ उन्होंने किया है उस पर वह अपना विचार दे। वे हर बात में अपने प्रभु के अनुसार करना चाहते थे, इसलिए उन्होंने चाहा कि वह बताए कि जो वे कर रहे थे उसे कैसे करना है।

जब हम मैदान से वापस आकर आवश्यक ताज़गी के लिए बैठते हैं तो जो हमने किया है और जैसे हमें करना चाहिए उसके बारे में प्रार्थना करते हुए हमें अपने प्रभु के साथ बातचीत आरम्भ करनी चाहिए। हम अभी भी सीख रहे हैं, और हम चाहेंगे कि वह हमारी सफलताओं और असफलताओं में हमें विचार करने में सहायता दे। हम कह सकते हैं कि नवीकरण का आरम्भ, जो कुछ हमने किया है उसके बारे में बताने से हो सकता है।

2. इसके अलावा, यह वचन यह भी संकेत देता है कि इसके बाद *आराम करने का जलपान* भी हुआ। प्रेरित लोगों को सिखाने और मसीह के पास लाने में बहुत अधिक व्यस्त थे। 6:31ख में हम पढ़ते हैं, ''(क्योंकि बहुत लोग आते जाते थे, और उन्हें खाने का अवसर भी नहीं मिलता था।)''

कई बार हम बहुत व्यस्त हो सकते हैं जिससे हो सकता है कि जैसे यहोशू ने किया हमें

संतुलित आहार लेने का समय भी न मिले। कई बार दिन छोटे होते हैं कि पूरा काम नहीं निपट पाता। इन दिनों पर हम परमेश्वर से समय को रोककर हमें अपना काम पूरा करने के लिए एक या दो और घण्टे देने को कहने की परीक्षा में जाएं।

हमारे काम चाहे कितने भी महत्वपूर्ण हो, इन चेलों ने हमें सोने मनन करने और प्रार्थना करने का थोड़ा समय निकालने का अच्छा उदाहरण दे दिया है। हम हर समय में तेज गति में नहीं चल सकते। परमेश्वर चाहता है कि हम उसके लिए किए जाने वाले अपने काम के बारे में गम्भीर और समर्पित हों, परन्तु उसका पुत्र हमें बीच बीच में रुककर विश्राम करना सिखाता है।

3. इन दो बातों के अलावा, हमारे प्रभु द्वारा प्रेरितों पर लागू किए गए विश्राम में उस काम के लिए जिसे वे कर रहे थे *नये सिरे से लगना* शामिल होगा। उन्होंने यीशु से ''अलग'' समय बिताया। कुछ देर विश्राम करने और यह बताने के बाद कि उन्होंने कैसे काम किया, उनके लिए यीशु के प्रतिज्ञा संकल्प या समर्पण के वचन के साथ जवाब देना उपयुक्त था।

आम तौर पर प्रार्थना का हमारा समय अच्छे सेवक बनने के संकल्प के अंगीकार और घोषणा के साथ आरम्भ होता है। इसी तरह, नवीकरण, जलपान और ताज़गी के हमारे समय समझदार कर्मचारी बनने, और अच्छे तरीके से सुनने और लोगों की आवश्यकताओं के प्रति अधिक संवेदनशील होने से आरम्भ करके मनों के समर्पण के साथ खत्म हों।

निष्कर्ष: कहा गया है कि ''जंग खाने देने से इस्तेमाल कर लेना अच्छा है।'' इस विचार में चाहे कुछ सही है, परन्तु इसमें कठिन परिश्रम करने और कुछ न करने के दो चरमों की बात की गई है। जीवन इन दो चरमों से कहीं बढ़कर है। जंग खाने और बहुत अधिक काम करने के बीच क्या होना चाहिए? एक उत्तर आवश्यकता अनुसार विश्राम करना है यानी ऐसा विश्राम जिसमें प्रभु को बताना, उसके सामर्थ में सुस्ताना और उसके जीवन और काम में फिर से लग जाना है।

जब यीशु ने अपने चेलों को विश्राम करने को कहा, तो उन्होंने वही किया जो उसने करने को कहा था: ''इसलिये वे नाव पर चढ़कर, सुनसान जगह में अलग चले गए'' (6:32)। उनका जवाब हमें यह याद दिलाता है कि समझदारी वही करने में है, जो यीशु करने को कहता है।

न तो हम थककर चूर होना चाहते हैं और न जंग लगवाना चाहते हैं। हम अपने शरीरों का सही ढंग से ध्यान रखकर उसकी महिमा के लिए इस्तेमाल करते हुए बीच बीच में भीड़ से अलग जाकर यीशु की सेवा में अपने जीवन जीना चाहते हैं। प्रार्थना के खामोशी भरे समयों में, हम अपनी ऊर्जा को फिर से जगा सकते हैं, मन के अपने जोश को फिर से नया कर सकते हैं और अपनी आत्माओं को फिर से समर्पित कर सकते हैं।

याद रखे जाने वाली दावत (6:30-44)

पांच हज़ार पुरुषों को, जिसमें स्त्रियां और बच्चों को नहीं गिना गया, खिलाने का यह आश्चर्यकर्म यीशु के जीवन के चारों विवरणों में शामिल किया गया है। इसके अलावा, सुसमाचार विवरणों में शामिल सभी आश्चर्यकर्मों में से, कोई संदेह नहीं कि इस आश्चर्यकर्म को सबसे अधिक लोगों ने देखा और सबसे अधिक लोगों ने इसमें भाग लिया।

स्त्रियों और बच्चों समेत, उस पहाड़ी आए लोगों की कुल संख्या अनुमानित दस से तेरह हज़ार थी। वचन में पांच हज़ार ''पुरुषों'' (ἄνδρες, *andres*, बहुवचन संज्ञा जिसका अर्थ

विशेष रूप में नारियों के उल्ट नर है; मत्ती 14:21); इसलिए यदि इस गिनती में यदि स्त्रियों और बच्चों को शामिल कर लिया जाए, तो इनकी संख्या कम से कम दोगुनी हो जाएगी।

बैतसैदा के इलाके में निर्जन स्थान पर यीशु के आस पास एक भीड़ जमा हो गई थी। यीशु गलील की झील के पश्चिमी किनारे की ओर गया था; और जब वे नाव में से निकले तो एक उन्मादी भीड़ उससे मिली और पहाड़ पर उसके पीछे पीछे गई। एक सपाट जगह मिलने पर यीशु वहां बैठ गया। लोग उसके सामने फैल गए। दिन तेजी से ढल गया और शाम हो गई, जिस कारण भीड़ को कुछ खाने और रात बिताने के लिए जगह ढूंढ़ने के लिए इधर उधर चले जाना चाहिए था।

चारों समानांतर विवरणों के शब्दों को इस प्रकार से कहा जा सकता है कि यीशु ने अपने प्रेरितों को पूछा कि ''हम इन लोगों का क्या करें?'' उन्होंने कहा, ''प्रभु हम इन्हें कैसे खिलाएं? इन्हें खिलाने के लिए इतना भोजन कहां से खरीदेंगे? इतना भोजन जो इन्हें खिलाने के लिए चाहिए इतने पैसे कहां से लाएंगे?'' हमारे प्रभु का जवाब था, ''हमारे पास कितना भोजन है?'' अंद्रियास को एक लड़का मिला जिसके पास दोपहर का खाना था। उसने कहा, ''हमारे पास जौ की पांच रोटियां और दो मछलियां हैं, पर इतने सारे लोगों के लिए इनसे क्या होगा?'' (देखें मत्ती 14:15-17; मरकुस 6:35-38; लूका 9:12, 13; यूहन्ना 6:5-9)।

यीशु ने उस लड़के का दोपहर का खाना अपने हाथों में लेते हुए, प्रेरितों से लोगों को पचास-पचास और सौ-सौ की पंक्तियों में बिठा देने को कहा। उसने उस भोजन के लिए धन्यवाद किया और फिर रोटियों और मछलियों को टुकड़ों में तोड़ने लगा। उसने उन टुकड़ों को बढ़ाते हुए एक के बाद एक टोकरी भर ली। प्रेरित उन टुकड़ों को खाने के लिए देते हुए इन टोकरियों को बारह दिशाओं में ले गए। भीड़ के पास खाने को बहुत था क्योंकि हर किसी ने पेटभर खाया था। खिलाना खत्म हो जाने के बाद यीशु ने प्रेरितों से बचे हुए टुकड़ों को इकट्ठा करके सम्भाल लेने को कहा। वे बचे हुए टुकड़ों के बारह टोकरे इकट्ठे कर लाए।

यीशु के इस आश्चर्यकर्म में हमारे लिए सबसे दिलचस्पी की बात क्या होनी चाहिए? इस कहानी में ज़ोर न तो लड़के पर है, न रोटी और मछलियों पर, और न ही इस पर कि यीशु ने थोड़ी सी रोटियों और मछलियों के साथ क्या किया। मुख्य मुद्दा *यीशु* है। वह कौन है? यही वह सच्चाई है जिसे हमें देखना आवश्यक है।

1. कहानी के आरम्भ में हम देखते हैं कि यीशु *सिखा रहा मसीह* है। इन लोगों को खिलाने से पहले यीशु ने उन्हें सिखाने में समय बिताया (6:34)। यह यीशु की विशेष बात थी। सबसे पहले वह बड़ा शिक्षक था।

उन आश्चर्यकर्मों से जो उन्होंने यीशु को करते सुना या वास्तव में देखा था, खिंचे जाने से भीड़ के लोग उसे सुनने के लिए आए थे। इन पीछे आने वालों के इस तथ्य को वह समझता था और उसने प्रेरितों के साथ उन को ऊपर ऊपर से प्रेरणा मिले होने की बात की थी। परन्तु यीशु ने उनकी अधूरी प्रेरणा के कारण उन्हें जाने नहीं दिया। उसने इसे सिखाने के अवसर के रूप में देखा; हो सकता है कि यह बहुत अच्छा समय न हो, परन्तु यीशु ने इसका लाभ उठाया।

यीशु का मुख्य उद्देश्य सब नगरों और कस्बों में जाकर सब लोगों को सिखाना था। इससे पहले उसने अपने प्रेरितों से कहा था, ''आओ; हम और कहीं आस-पास की बस्तियों में जाएँ,

कि मैं वहाँ भी प्रचार करूँ, क्योंकि मैं इसी लिये निकला हूँ'' (1:38)।

2. वचन यहां पर यीशु को *दयावान मसीह* के रूप में दिखाता है। जब यीशु ने किनारे पर पहुंचकर लोगों की भीड़ को अपनी प्रतीक्षा करते हुए देखा, तो ''उसने ... उन पर तरस खाया, क्योंकि वे उन भेड़ों के समान थे, जिनका कोई रखवाला न हो; ...'' (6:34)। यीशु को अगुआई के लिए उसे ढूंढ़ते हुए इन लोगों पर बड़ा तरस आया। वे नेतृत्व रहित, परेशान और समझ की खोज में मारे-मारे फिर रहे थे। उन्हें यह पता नहीं था कि उस सहायता के लिए जिसकी उन्हें आवश्यकता लगती थी वे क्या करें और कहां जाएं। यीशु ने उन्हें उन भेड़ों के रूप में देखा जिन्हें चरवाहे की आवश्यकता हो, और उन्हें देख उसका मन भर आया।

3. इस आश्चर्यकर्म का कोई भी अध्ययन तब तक प्रामाणिक नहीं होगा जब तक छात्रों को यह नहीं दिखाया जाता कि यीशु *सर्वशक्तिमान मसीह* है। पहले तो प्रेरितों ने सुझाव दिया कि भूखे लोगों को भेज दिया जाए। उन्हें लगा कि उनके लिए स्थिति को सम्भालना बहुत कठिन है। प्रेरितों के पास उन्हें भेज देने के सिवाय और कोई चारा नहीं था।

यीशु ने फिलिप्पुस से पूछा, ''हम इनके भोजन के लिये कहां से रोटी मोल लाएं?'' (यूहन्ना 6:5)। फौरन जवाब देते हुए, फिलिप्पुस ने कहा, ''दो सौ दीनार की रोटी भी उनके लिये पूरी न होंगी कि उनमें से हर एक को थोड़ी थोड़ी मिल जाए'' (यूहन्ना 6:7)। दीनार एक मज़दूर और सिपाही की एक दिन की मज़दूरी के बराबर होता है। दूसरो शब्दों में, फिलिप्पुस कह रहा था कि इन लोगों के लिए थोड़ा सा भोजन खरीदने के लिए छह महीनों से अधिक की कमाई की आवश्यकता होगी।

भीड़ में किसी लड़के से अंद्रियास को जो भोजन मिला था उसमें जौ की पांच छोटी छोटी रोटियां और दो मछलियां थीं (सारडीन के अकार की; देखें यूहन्ना 6:8, 9)। हमारे प्रभु ने लड़के के दोपहर के भोजन को लेकर एक बड़े भोज में बदल दिया। उसने वहां उपस्थिति हर किसी को खिलाया पर फिर भी बहुत सारा बच गया।

ऐसा काम कौन कर सकता था? यीशु की कार्यवाही ने हज़ारों लोगों की उपस्थिति में उसकी विशुद्ध सामर्थ को दिखा दिया। इसकी केवल एक ही तर्कसंगत व्याख्या की जा सकती थी कि यह सर्वशक्तिमान मसीह था, जिसकी आवाज़ अनन्त अकाशों में हर जगह जाकर बीजों में जीवन डाल देती है।

4. आश्चर्यकर्म को देखकर, हम यह निष्कर्ष निकालने को विवश हो जाते हैं कि यीशु *परोपकारी मसीह है*। निश्चय ही उसकी दिलचस्पी लोगों के प्राणों में थी परन्तु उसे उनके शरीरों की भी चिंता थी। लोग शरीर नहीं हैं जिनमें प्राण हैं बल्कि वे प्राण हैं जिनके शरीर हैं। मनुष्य को पृथ्वी के लिए नहीं बनाया गया था बल्कि पृथ्वी को मनुष्य के लिए बनाया गया। फिर भी हमारी ये देहें परमेश्वर के लिए और हमारे लिए महत्वपूर्ण हैं।

किसी न किसी रूप में, अंत के दिन हमारी देहें जिलाई जाएंगी। यीशु ने पृथ्वी पर अपने तैंतीस वर्ष रहने के दौरान मानवीय देह को ओढ़ने के लिए अपने आपको देकर हमारे शारीरिक भाग की शोभा बढ़ाई है। उसने अपने काम या बातों में कभी भी हमारे शरीरों को तुच्छ नहीं जाना। शरीर का इस्तेमाल परमेश्वर की महिमा के लिए किया जाना चाहिए और ऐसा इसकी देखभाल करके, इसे खिलाकर, उसकी महिमा के लिए इसमें काम करके और इसे उचित आराम

देकर किया जाता है।

5. इस अवसर पर उपस्थिति लोगों की बड़ी भीड़ के लिए यीशु की चिंता उसे *प्रेमी मसीह* के रूप में दिखाती है। उसकी दिलचस्पी केवल प्रेरितों में और कुछ दूसरे लोगों में ही नहीं थी जो उसमें विश्वास दिखाते थे। उसने अपने आस पास इकट्ठा हुए हज़ारों लोगों के लिए अपनी गहरी दिलचस्पी दिखाई। उसकी नज़र में हर व्यक्ति विशेष है।

यीशु हर व्यक्ति को अगले व्यक्ति के जितना ही महत्वपूर्ण मानता था। उसे हर चेले के सिर के बालों की संख्या पता थी (देखें लूका 12:7), वह अपने आस पास के ज़रूरतमंद लोगों की पीड़ा को अपनी पीड़ा की तरह महसूस करता था। उसने कुछ लोगों को निकाल दिया क्योंकि उनमें वह समर्पण नहीं था जो उसके पीछे चलने के लिए आवश्यक था, परन्तु उसने कभी किसी को जो सचमुच में उसका चेला बनना चाहता हो नहीं निकाला।

6. यह घटना यह भी दिखाती है कि यीशु *सहयोग करने वाला मसीह* है। उसने कई बार दूसरों से सहायता मांगी। यीशु ने चेलों से रोटी मांगी; उन्हें यह विचार करना था कि भीड़ को कैसे खिलाना है और यह पता लगाना था कि क्या खिलाना था। चेलों के यह सुझाव देने के बाद कि लोगों को भेज दे क्योंकि उन्हें खिलाने के लिए कोई भोजन नहीं था, यीशु ने उनसे कहा, ''तुम ही उन्हें खाने को दो!'' (6:37; लूका 9:13)। लोगों को भूख लगी थी और यीशु उन्हें भोजन कराने वाला था।

तो फिर यीशु ने पांच रोटी और दो मछलियों वाले लड़के को परेशान क्यों किया? इतने से खाने से कुछ नहीं होना था। यदि यीशु भोजन बनाने की योजना बना रहा था तो जैसे उसने जौ की पांच रोटियां और दो मछलियां लेकर किया, वैसे ही बड़ी आसानी से वह बिना कुछ लिए काम कर सकता था।

इसके अलावा तोड़ने के बाद यीशु ने चेलों को भोजन को लोगों में बांट देने को कहा। हज़ारों लोगों ने खाया, परन्तु सब ने आश्चर्यकर्म होते हुए नहीं देखा। प्रेरितों को भोजन बांटते देखने वाले बहुत से लोगों में से कुछ ही लोग होंगे जिन्होंने रोटियों और मछलियों को हज़ारों टुकड़ों में बंटते हुए देखा था। अंत में यीशु ने चेलों से बच गए टुकड़ों को इकट्ठा कर लेने को कहा।

यीशु ने मनुष्य के माध्यम का इस्तेमाल किया, चाहे उसे अपनी सहायता के लिए किसी की आवश्यकता नहीं थी। क्या उसने तब सहायता मांगी थी जब उसने आकाश में तारे लगाए थे? बेशक यीशु ने इस आश्चर्यकर्म में अपने प्रेरितों और दूसरे लोगों को उन्हीं के लाभ के लिए सहायता करने को कहा। जो कुछ भी वह करता है, वह चाहता है कि लोग उसमें भाग लें। वह मिलकर काम करने वाला मसीह है।

निष्कर्ष: उस पहाड़ी पर इन रोटियों और मछलियों को कई गुणा बढ़ाकर हज़ारों लोगों को खिलाने वाला परमेश्वर का पुत्र ही है। वह ईश्वरीय मसीह को छोड़ कोई और नहीं हो सकता। जिसे संसार में हमें हमारे पापों से बचाने के लिए भेजा गया था।

यदि यह आश्चर्यकर्म यीशु के परमेश्वर का पुत्र होने का प्रमाण नहीं है तो वह और क्या सबूत देना आवश्यक था? हमें यकीन दिलाने के लिए उसे और क्या करना पड़ेगा? यदि हम स्रोत अर्थात ईश्वरीय वचन पर विश्वास करते हैं तो हम इस निष्कर्ष को मान लेंगे कि यह आश्चर्यकर्म हमें विश्वास करने को विवश करता है। इस निष्कर्ष को नकारने का केवल एक ही तरीका यह

कहना है, ''मैं नहीं मानता कि बाइबल इस आश्चर्यकर्म के बारे में सच बोल रही है।''

वचन को अपने हाथों में लेकर, हम खुद को जीवते परमेश्वर के पुत्र इम्मानुएल की सच्चाई के निकट ले आए हैं। जब हम उस वचन को जो हमें दिया जाता है, मान लेते हैं तो हमारे मनों में विश्वास पैदा होता है। यदि हमारे मन साफ़ हैं जो पवित्र शास्त्र की शिक्षा को मान लेते हैं तो हम यीशु में विश्वास कर लेंगे। मसीह के सुसमाचार के आज्ञापालन के द्वारा जब हम उस विश्वास पर अमल करेंगे तो हमें मसीह और अनन्त जीवन में लाया जाएगा। यहां पर बताई गई घटना बच्चों को कहानियां सुनाते समय सुनाई जाने वाली परी-कथा नहीं है। यह यीशु की पृथ्वी की सेवकाई का एक प्रदर्शन है। इससे इनकार करने वाले लोग अपनी ही अनन्तकालिक हानि के लिए ऐसा करते हैं परन्तु जो इसे मान लेते हैं अनन्त आशा की ओर आगे बढ़ रहे हैं।

क्या हमें संदेश मिला (6:45-52)

मरकुस यीशु को मसीहा के रूप में प्रस्तुत करता है जो काम करता है और अमल करता है। वह यहोवा का दास है। हां, वह मसीह ही है जिसने हर अवसर पर सिखाया; परन्तु जब वह सिखा नहीं रहा होता था तो वह लोगों पर अपना अनुग्रह उण्डेलते हुए उनके बीच में अचम्भे काम कर रहा होता था। यह आश्चर्यकर्म जो उसने किया, यदि इसे सही ढंग से समझकर अमल में लाया जाए तो लोगों के मनों में इस पर कोई दुविधा नहीं होगी कि वह कौन था। परन्तु सुनने वालों ने उसकी प्रमुख रूपरेखा को ही देखा जो वह करने के लिए आया था। लोग ऊंचा सुनते थे, यहां तक कि यीशु के आश्चर्यकर्मों को देखकर भी। पृथ्वी पर उसकी सेवकाई का उद्देश्य केवल उस शिक्षा के द्वारा जो उसने दी, नहीं पहुंचाया जा सकता, न ही पूरी तरह से उन आश्चर्यकर्मों के द्वारा जो उसने किए।

6:45-52 में हम यीशु को अपने प्रेरितों पर अपने आपको इस प्रकार से प्रकट करते हुए देखते हैं जैसे उसने पहले नहीं किया था। यह प्रकाशन निजी था जो आश्चर्यकर्म करने की सामर्थ से लैस और जोश, प्रेम और दिलेरी से भरा हुआ था। उसके प्रेरितों की समझ इस में बढ़ रही थी कि वह कौन है और क्या करने के लिए आया है, परन्तु उनके लिए बहुत कुछ समझना अभी बाकी था। उनकी आवश्यकताएं थीं जिन पर यीशु का विशेष ध्यान जाना आवश्यक था।

1. इस विवरण का आरम्भ यीशु के पहाड़ से झील की ओर देखते हुए होता है। अपने प्रभु को वहां पर अकेले देखकर, हमें समझ में आता है कि *उसमें वह आत्मिकता थी जिसकी हमें आने वाले मसीहा से उम्मीद होनी थी*। ऐसा हो सकता है कि कोई प्रार्थना तो करता हो परन्तु परमेश्वर के साथ उसका सम्बन्ध सही नहीं हो (जैसे फरीसी दिखावटी प्रार्थनाएं करते थे), जिसका सम्बन्ध सचमुच में परमेश्वर के साथ हो वह उससे प्रार्थना करते हुए उसकी उपस्थिति में बहुत समय बिताएगा।

हम मसीह को प्रार्थना करते हुए देखकर उसके असली स्वभाव के बारे में जानते हैं। भीड़ को खिलाने और चेलों को भेज देने के बाद वह पहाड़ पर पिता के साथ होने के लिए चला गया। दिन का आरम्भ करने से पहले प्रार्थना करना यीशु की आदत थी और बेशक दिन की समाप्ति भी वह प्रार्थना के साथ ही करता था। यदि परमेश्वर के पुत्र यीशु को जो कि खुद उद्धारकर्त्ता है, प्रार्थना करना आवश्यक था तो उसके चेलों को प्रार्थना करना और भी कितना अधिक आवश्यक

है!

निश्चय ही हमें परमेश्वर के पुत्र मसीहा से अपने पिता के सम्पर्क में रहने की उम्मीद होगी। सुसमाचार के विवरणों में यीशु के जीवन की हर बात नहीं बताई गई, क्योंकि उनमें केवल चालीस दिनों की बात है। फिर भी बीच में यीशु को प्रार्थना करते हुए दिखाया गया है। यह तस्वीर ध्यान खींचने वाली है! यीशु के प्रार्थना के जीवन की यह बात उसके आत्मिक जीवन के बारे में बहुत कुछ बताती है। परमेश्वर के पुत्र ने पृथ्वी पर, हम पर अपने परमेश्वर होने को पिता के साथ जिसने उसे भेजा, अपनी प्रार्थनापूर्वक निरंतर बने रहने के द्वारा दिखाया।

2. कहानी में आगे हम यह भी देखते हैं कि *यीशु में सर्वशक्तिमान होने की सामर्थ थी जिसकी हमें उम्मीद होगी कि मसीहा में हो*। उसने चेलों को झील पर अपनी नाव में देखा। वे तेज़ आंधी के बीच में फंसे हुए थे और किनारे पर लगना उनके लिए कठिन हो रहा था। मूल यूनानी में कहा गया है कि वे ''नाव को धकेलते हुए परेशान हो गए'' थे। वे इस पर पूरी ज़ोर से काम कर रहे थे परन्तु मुकाबले में बुरी तरह हार रहे थे।

यीशु पहाड़ पर अपनी प्रार्थना में उन्हें देख रहा था। उसने उन्हें परेशानी में कितनी देर तक देखा, हमें नहीं मालूम। जिस समय वह उनकी सहायता के लिए आया वह सुबह 3:00 से 6:00 बजे के बीच रात का चौथा पहर था। उसने उन्हें संघर्ष करने दिया होगा ताकि जब वह उनके पास आए तो उन्हें उस सबक का पता चल जाए जो वह उन्हें सिखाना चाह रहा था। झील पर इस लम्बी रात से पहले उन्होंने शाम को यीशु को रोटियों और मछलियों के साथ हज़ारों लोंगों को खिलाते देखा था, परन्तु क्या उन्हें उसकी सामर्थ याद और यह पता होगी कि वह उनका ध्यान रख रहा था?

मरकुस 6:48 कहता है, ''जब उसने देखा कि वे खेते खेते घबरा गए हैं, क्योंकि हवा उनके विरुद्ध थी, तो रात के चौथे पहर के निकट वह झील पर चलते हुए उनके पास आया ...।'' हमें कोई हैरानी नहीं होती कि यीशु ने चेलों को बचा लिया। हमें उसके उन्हें बचाने की उम्मीद ही होगी। वह सब चीज़ों का चाहे वह झील, शैतान, हर प्रकार की बीमारी और प्रेरितों का प्रभु है। उसने अपने प्रेरितों को क्यों नहीं बचाना था, वह सेवकोई में अपने साथ काम करने के लिए तैयार कर रहा था? परन्तु यह आयत अंत में कहती है, ''और उनसे आगे निकल जाना चाहता था।'' स्पष्टतया यीशु की योजना उनके विश्वास को और अधिक परखने की थी; परन्तु जब उसने देखा कि वे भय और तनाव में घिर गए हैं तो वह तुरन्त उनके पास गया। नाव में उसके आने पर आंधी थम गई।

हमें परमेश्वर के पुत्र मसीह के शक्ति में सर्वशक्तिमान होने की उम्मीद होगी। उसमें सामर्थ नहीं है बल्कि सब चीज़ों पर सामर्थ है। यीशु के मानवीय इतिहास में से आश्चर्यकर्म करने की सामर्थ को निकाल देने का अर्थ उसके मसीहा होने के सबसे बड़े प्रमाण का नष्ट कर देना होगा। इस तथ्य के साथ कि यीशु परमेश्वर का पुत्र है, हमें किसी भी बात पर जो उसकी सेवकाई के दौरान घटी हो, चाहे वह पानी पर उसका चलना हो, तूफ़ान को शांत करना या मछली को मन्दिर का कर चुकाने के लिए पैसे देने की आज्ञा देना (मत्ती 17:24-27) चकित नहीं होना चाहिए। जब हम यीशु की सामर्थ को देखते हैं तो हमें पता चलता है कि वह सचमुच में कौन है। अलौकिक शक्ति का उसका प्रदर्शन उसके परमेश्वर होने का ठोस सबूत है।

3. यीशु की सेवकाई की यह अनोखा आश्चर्यकर्म इस बात को दिखाता है कि *उसमें वह प्रेमपूर्वक लगाव था जिसकी हमें आने वाले मसीहा से उम्मीद होनी थी*। यीशु ने प्रेरितों के भय पर उन्हें उनकी परिस्थिति के अनुकूल सांत्वना देकर काम करना चुना। उन्होंने बाहर पानी पर देखा और पाया कि वह इसके ऊपर से चल रहा है और जो कुछ उन्होंने देखा था उससे वे भयभीत हो गए। सर्वशक्तिमान मसीह को देखने के बजाय (जैसा कि उसने चाहा था कि वे उसे देखें), उन्हें लगा कि वे किसी भूत को देख रहे हैं (6:49, 50)। जब उन्हें बड़े उद्धारकर्त्ता और प्रभु को देखना चाहिए था और यह याद रखना चाहिए था कि वह हर समय उनके साथ है, उन्होंने उसे भूत समझ लिया! यीशु ने तुरन्त उन्हें हिम्मत देने वाले शब्दों के साथ उनके भय को उत्तर दिया ''ढाढ़स बाँधो: मैं हूँ; डरो मत!'' (6:50)।

मरकुस का विवरण पतरस के यीशु से उसे पानी पर चलने देने की इच्छा के बारे में नहीं बताता, जैसा कि मत्ती 14:22-33 बताता है। क्या इस वचन से इसे इसलिए निकाला गया क्योंकि इससे सर्वशक्तिमान मसीह में प्रेरितों के विश्वास की कमी की एक और अभिव्यक्ति मिल जाती है? हम पढ़ते हैं कि ''वह उनके पास नाव पर आया, और हवा थम गई: और वे बहुत ही आश्चर्य करने लगे'' (6:51)। एक अन्य अवसर पर यीशु ने आंधी को थम जाने की आज्ञा दी और आंधी थम गई; इस अवसर पर यीशु की उपस्थिति से ही आंधी रुक गई।

यीशु हर समय सांत्वना देने वाला मसीह है। उसने अपने चेलों की रक्षा करने का वचन दिया है। हम उससे वह करने की उम्मीद करते हैं जिसका उसने वादा किया है। हो सकता है कि वह अपने चेलों को तेज़ आंधियों का सामना करने देकर उन्हें कीमती सबक सीखने दे, परन्तु यदि हम याद रखते हैं कि वह कौन है और उसकी ओर देखते हैं तो वह हमें हारने नहीं देगा।

हम जीवित परमेश्वर के पुत्र से प्रेमी उद्धारकर्त्ता होने की उम्मीद करेंगे, क्योंकि ''जैसा बाप वैसा बेटा।'' यीशु ने अपने चेलों के भय और पीड़ा के समयों के दौरान उन्हें तसल्ली देकर परमेश्वर के प्रेम को दिखाते हुए, दिखा दिया कि वही मसीहा था। वे इतना मज़बूत नहीं हुए थे जितना वह उन्हें बनाना चाहता था; पर वह उनकी सहायता के लिए आया, चाहे वे जो देख रहे थे उसे समझ नहीं पाए। ऐसी तसल्ली मसीहा ही दे सकता था।

निष्कर्ष: आश्चर्यकर्म के इस विवरण की अंतिम आयत हमारे लिए दर्पण का काम करती है: ''वे उन रोटियों के विषय में न समझे थे, क्योंकि उनके मन कठोर हो गए थे'' (6:52)। इससे हम यह कहने की परीक्षा में पड़ सकते हैं कि ''यदि मैं वहां होता तो मुझे समझ में आ जाना था। यदि मैंने यीशु को वे रोटियां और मछलियां तोड़ते हुए देख लेता तो मुझे समझ में आ जाना था और मैंने विश्वास कर लेना था कि वह सचमुच में कौन है।'' उसे जो कुछ यीशु ने रोटियों और मछलियों का किया उसकी हमारे पास उससे साफ़ तस्वीर है जो प्रेरितों के पास थी, है ना? यह पक्का है कि उन्होंने इसे देखा; परन्तु इसके साथ ही हम बाइबल में जो हो रहा था और जिस कारण से हो रहा था उसकी गवाही को भी देखते हैं। भयभीत होने पर हम क्या करते हैं? क्या हम अपना ध्यान यीशु पर लगाते हैं? क्या हम सचमुच में उस पर भरोसा रखते हैं? क्या हमने सचमुच में संदेश को समझ लिया है?

विश्वास वचन की बात से बढ़कर मानना है यानी यह वचन की बात को भरोसे के साथ अमल में लाना है। हम जानते हैं कि यीशु कौन है। उसका प्रार्थना करना मसीहा के आत्मिक

होने का संकेत है। उसके आश्चर्यकर्मों से उस सामर्थ की झलक मिलती है जो केवल मसीहा में हो सकती है और अपने चेलों को दी गई तसल्ली केवल मसीहा की ओर से सकती है। हमने इसका अध्ययन किया है; हम इसे जानते और मानते हैं। फिर भी क्या हम प्रतिदिन उसमें भरोसा कर रहे हैं ?

प्रेरितों के मनों के सम्बन्ध में कड़ा शब्द ''कठोर हो गए'' इस्तेमाल हुआ है। उन्होंने अपने मनों को वैसे कठोर नहीं किया था जैसे फिरौन ने अपने मन को कर लिया था, परन्तु उन्होंने मसीह से ध्यान हटा लिया और उसकी शिक्षाओं के अच्छे छात्र नहीं थें। उन्होंने आश्चर्यकर्मों के अर्थ पर ध्यान लगाने को नज़रअंदाज़ किया और जो कुछ उन्होंने देखा था उसके असर को लागू नहीं कर पाए। यीशु ने उन्हें इस संकट को सहने दिया ताकि वे अपने भरोसे और समझ का बढ़ा सकें।

मसीह और शांति दोनों साथ साथ चलते हैं। यदि प्रेरितों को रोटियों और मछलियों वाले पिछले आश्चर्यकर्म के सबक की समझ आ गई होगी तो उन्हें आंधी या झील की परवाह नहीं होनी थी। हर सबक जो हमें मसीह से मिलता है वह अगले सबक को थोड़ा आसानी से सीखने वाला बनाने वाला होना चाहिए। क्या हम सीखने में कमज़ोर या हम उन गिने चुने चेलों में से हैं जिन्होंने सचमुच में यीशु में भरोसा करना सीख लिया है ?

यीशु कौन है ? (6:53-56)

गलील की झील पर तूफ़ानी रात बीत चुकी थी। प्रेरितों के दिमाग में यीशु के अधिकार और नेतृत्व में भरोसा करने का सबक बैठ चुका था। प्रेरित गन्नेसरत में पहुंच गए थे जो कि झील के पश्चिमी ओर मैदानी इलाका था। अपनी नावों को उस किनारे लगाकर वे इलाके के अंदर जाने लगे। यीशु के आने की खबर आग की तरह फैल गई। खबर सुनकर कस्बों और गांवों के कुछ लोग भाग आए थे। यीशु इस जिले में पहले नहीं आया था परन्तु लोगों ने उसके बारे में सुन रखा था और वे बड़े उत्सुक थे कि वे उनके बीच में आ रहा है।

अधिक सम्भावना यही है कि भीड़ में से यीशु के वस्त्र को छू लेने वाली स्त्री की कहानी इस इलाके में फैल गई थी (मरकुस 5:25-34)। इस कहानी से लोगों के मनों में यह विश्वास आ गया था कि उसके वस्त्र को छूने से भी उन्हें चंगाई मिल जाएगी। मित्रों और रिश्तेदारों ने बीमारों को लाकर वहां रख दिया तथा ताकि यीशु उनके पास से गुज़रे। स्वस्थ लोग यह प्रार्थना करते होंगे कि वह उन जगहों पर से जाए जहां उन्होंने बीमारों को इकट्ठा किया था। मरकुस इसे इस प्रकार से दिखाता है: ''और जहाँ कहीं वह गाँवों, नगरों, या बस्तियों में जाता था, लोग बीमारों को बाज़ारों में रखकर उससे विनती करते थे कि वह उन्हें अपने वस्त्र के आँचल ही को छू लेने दे'' (6:56)।

इस संक्षिप्त वचन में केवल थोड़ा सा विवरण है परन्तु आश्चर्यकर्म बहुत किए जा रहे थे। यीशु के उस इलाके में से जाने, अधिक से अधिक उपदेश देने से पूरा इलाका सदा के लिए प्रभावित हो गया होगा। ''और जितने [उसके वस्त्र के आंचल को] छूते थे, सब चंगे हो जाते थे'' (6:56; देखें मत्ती 14:36)। यह वाक्य हमें यीशु के आश्चर्यकर्मों के साथ साथ उनके भेद और तेज के बारे में सोचने पर मजबूर कर देता है।

1. इस दृश्य में हम *उस तरस भरे प्रेम को जो यीशु में था* देखते हैं। हमारे उद्धारकर्त्ता को

मालूम था कि स्वस्थ तन में बीमार मन के होने के बजाय बीमार तन में स्वस्थ मन का होना बेहतर होगा, परन्तु वह जितने अधिक से अधिक लोगों को चंगा कर सका उसने किया। लोग अपनी हर बीमारी, रोग और कमज़ोरी से चंगे होना चाहते थे। उनका विश्वास था कि यीशु अपने हाथ के केवल एक स्पर्श से उन्हें चंगा कर सकता है और उनका मुख्य फोकस यही लगता है। जब उन्हें यीशु की शारीरिक रूप में उपस्थिति में होने का अवसर मिला तो उन्होंने क्या चाहा? उन्होंने शारीरिक चंगाई चाही। उनके लिए यह सबसे बढ़कर था। उन्हें उस अनन्त जीवन को जिसे यीशु ने देने की पेशकश, की उन शारीरिक बीमारियों से जो उनमें थीं, प्राथमिकता देना कठिन था।

फिर भी यीशु ने उन्हें खुद को स्पर्श करने देकर और वह चंगाई देकर जिसे वे चाह रहे थे, उन्हें सिखाया। यह तो ऐसा है जैसे यीशु ने चंगाई पाने वालों को इस उम्मीद से कि वे उस अनन्त जीवन को ढूंढ़ें जिसे देने की वह पेशकश कर रहा था, उनके घावों पर दया उण्डेल दी हो।

2. यह दृश्य हमें उस *सर्वशक्ति का जो यीशु में है* भी ध्यान दिलाता है। यीशु अपने आप में सामर्थ है क्योंकि वह देहधारी हुआ परमेश्वर है। जैसा कि उम्मीद थी, जो उसे स्पर्श कर पाए, वे तुरन्त चंगे हो गए।

ये आश्चर्यकर्म उनसे जो अभी तक हमने देखें हैं, बिल्कुल अलग थे। आम तौर हम ''चमत्कार'' शब्द का गलत इस्तेमाल करते हैं। जब कोई कहता है, ''सूर्यास्त चमत्कार है। है न?'' हमारा उत्तर हो सकता है, ''बिल्कुल सही बात है। मैंने ऐसा पहले कभी नहीं देखा है।'' नया नियम इस शब्द का इस्तेमाल उससे बहुत अलग ढंग से करता है जो हम अपनी आम बातचीत में करते हैं। आश्चर्यकर्म परमेश्वर की शक्ति के अलौकिक प्रदर्शन थे यानी ये वे काम थे जिनसे प्रकृति के नियमों को अनदेखा करके उस ईश्वरीय अर्थात सृजनात्मक शक्ति को दिखाया गया जो केवल परमेश्वर की है। मनुष्य चीज़ों को बना सकते हैं यदि उन्हें बनाने के लिए कुछ समान दिया जाए, परन्तु हम रच नहीं सकते। रच केवल परमेश्वर सकता है। यीशु ने जब भी किसी को चंगाई दी या किसी मुर्दे को जिलाया, तो उसने जीवन को रचा।

इन आश्चर्यकर्मों का जो यीशु ने किए थे जादू से कोई सम्बन्ध नहीं था। वे उसी क्षण, मनुष्य की समझ से परे होते थे। उन पर काम करते हुए यीशु ने पृथ्वी पर परमेश्वर की सामर्थ को दिखाया। कुरनेलियुस को दिए गए अपने उपदेश में, पतरस ने कहा, ''परमेश्वर ने किस रीति से यीशु नासरी को पवित्र आत्मा और सामर्थ्य से अभिषेक किया; वह भलाई करता और सब को जो शैतान के सताए हुए थे, अच्छा करता फिरा, क्योंकि परमेश्वर उसके साथ था'' (प्रेरितों 10:38)।

हां, आश्चर्यकर्मों में हम भेद और तेज को देखते हैं। यीशु के ऐसे अचम्भे करने की विलक्षण योग्यता इस शानदार सच्चाई को दिखाती है कि वह परमेश्वर का पुत्र अर्थात परमेश्वर है।

3. इसके अलावा यह दृश्य हमारे लिए उस *सम्पूर्ण वफ़ादारी को जो यीशु में है* भी दिखाता है। जिस प्रकार से परमेश्वर के लिए झूठ बोलना असम्भव है, वैसे ही यीशु के लिए भी किसी से भी या किसी भी बात पर झूठ बोलना असम्भव है। उसने कहा, ''मार्ग और सत्य और जीवन मैं ही हूँ'' (यूहन्ना 14:6)। उसने सच बोला; इससे भी बढ़कर, वह सच था और है। उसके अस्तित्व के हर भाग से सच और वफ़ादारी टपकते हैं। जो कुछ भी वह कहता है वह सच होता है; जो कुछ भी वह करता है वह सच होता है; और जो कुछ भी वह विचार करता है वह सच होता है।

आश्चर्यकर्म उसकी वफ़ादारी की घोषणा करते हैं। दूसरे लोग लोगों के बीच में मसीहा होने के दावे कर रहे थे, परन्तु अपने ईश्वरीय दावों के लिए उनके पास कोई प्रमाण नहीं था। यीशु ने जो कुछ किया और जो कुछ कहा, उससे उस सच्चाई को जो वह है और जो उसने बताई, साबित किया। उसके आश्चर्यकर्म सम्पूर्ण, निष्कंलक, अटूट और किसी भी प्रकार की चलाकी से रहित थे। वे सबके सामने खुले में किए जाते थे। ईश्वरीय वचन का भाग होने के कारण सदियों से इन आश्चर्यकर्मों पर ऐसी समीक्षा होती रहती है। किसी ने कभी यह इनकार नहीं किया कि यीशु ने आश्चर्यकर्म किए क्योंकि वे इनकार कर ही नहीं सकते थे। कुछ लोगों ने उसकी शक्ति को बालज़बूल के साथ जोड़ा, परन्तु उन्होंने इस वास्तविकता से इनकार नहीं किया कि उसने काम किए थे।

लोग यीशु के आश्चर्यकर्म को छिपाने या नज़रअंदाज़ करने की कोशिश कर सकते हैं, परन्तु वे उनसे इनकार नहीं कर सकते। वे बड़ी शान और सिद्धता के साथ घोषणा करते हैं कि यीशु ही मसीह है। उसका सर्वशक्तिमान होना इसे साबित करता है।

निष्कर्ष: तो फिर यीशु कौन है? यह संक्षिप्त विवरण उसके बारे में क्या कहता है? वह वही है जिसमें करुणामय प्रेम, सर्वशक्तिमान होने की योग्यता और सम्पूर्ण वफ़ादारी है। हम सब को एक मित्र, एक उद्धारकर्त्ता और एक प्रभु की आवश्यकता है जिसमें ये सब खूबियां हों।

वह सर्वोच्च मित्र है। उससे बढ़कर वफ़ादार, समझदार या भरोसे के योग्य कोई और नहीं है। वह हमें ऐसे समझता है जैसे कोई दूसरा नहीं समझ सकता। वह हमें बढ़िया से बढ़िया चीज़ें ऐसे खिलाता है जैसे कोई और नहीं खिला सकता। यीशु कैसा दोस्त प्यारा!

उद्धारकर्त्ता के रूप में, यीशु क्षमा करता और प्रतिदिन हमारे लिए विनती करता और अनन्तकाल के लिए हमें बचाता है। जीवन की इस सबसे बड़ी आवश्यकता में हमारी सहायता और कौन कर सकता है? हमारे सामने पाप, उद्देश्य और मृत्यु की बड़ी समस्याएं हैं। केवल वही है जो हमें क्षमा कर सकता है, बहुतायत का जीवन देता और हमें अनन्त जीवन देता है। वह हमारे अनन्त घर में मृत्यु के मज़बूत द्वारों में से हमारे साथ चल सकता है। वह हमें हमारे पापों से बचाकर अंत के आने तक बचाकर रख सकता है।

यीशु वह प्रभु है जो हमें सम्पूर्ण अगुआई दे सकता है। वह हमें कभी गुमराह नहीं करेगा। उसका वचन सच्चा है, उसकी निगरानी अचूक है, और उसकी वफ़ादारी सदा की है। वह "सब प्रकार की प्रधानता, और अधिकार, और सामर्थ और प्रभुता के, और हर एक नाम के ऊपर [है], जो न केवल इस लोक में, पर आने वाले लोक में भी लिया जाएगा" (इफि. 1:21)।

मृत्यु का सामना करने पर हम यूहन्ना को अपने प्रकाशन में कही गई यीशु की बात को याद कर सकते हैं:

> मत डर; मैं प्रथम और अन्तिम और जीवन हूं; मैं मर गया था, और अब देख मैं युगानुयुग जीवता हूं; और मृत्यु और अधोलोक की कुंजियां मेरे ही पास हैं। ... जो जय पाए, मैं उसे उस जीवन के पेड़ में से जो परमेश्वर के स्वर्गलोक में है, फल खाने को दूंगा (प्रकाशितवाक्य 1:17–2:7)।

यीशु कौन है? वह महिमा का प्रभु है! यदि हम उसे बदलने दें तो वह हमें अपने स्वरूप

में महिमा से महिमा में बदल देगा। उसकी संतान होने के कारण हमें अनन्त उद्धार मिलेगा।

टिप्पणियां

[1]एक समानांतर विवरण मत्ती 13:54-57 में है; देखें लूका 4:16-22. [2]नासरत के छोटे से कस्बे के बारे में नतनएल का यही विचार था; यूहन्ना 1:46-51 में यीशु से उसकी मुलाकात ने उसकी सोच को पूरी तरह से बदल दिया। [3]एंथनी ली ऐश, द *गॉस्पल अकॉर्डिंग टू लूक,* पार्ट 1, द लिविंग वर्ड कॉमैंट्री (ऑस्टिन, टैक्सस: स्वीट पब्लिशिंग कं., 1972), 90. [4]ह्यूग ऐंडरसन, द *गॉस्पल ऑफ़ मरकुस,* न्यू सैंचुरी बाइबल कॉमैंट्री (ग्रैंड रैपिड्स, मिशिगन: विलियम बी. एर्डमैंस पब्लिशिंग कं., 1976), 157. [5]केवल मरकुस हमें बताता है कि यीशु एक बढ़ई था न कि केवल यह कि वह बढ़ई का पुत्र था। [6]जस्टिन मार्टिर ने लिखा है कि वह ऐसी चीज़ें बनाता था। (जस्टिन मार्टिर *डायलॉग विद ट्रायफ़ो* 88.) ''बढ़ई'' के लिए शब्द, τέκτων (*tektōn*), का अर्थ कारीगर हो सकता है जो केवल लकड़ियां जोड़ने से अधिक है। (विलियम बार्कले, द *गॉस्पल ऑफ़ मरकुस,* दूसरा संस्करण, द डेली स्टडी बाइबल [फिलाडेल्फिया: वैस्टमिंस्टर प्रेस, 1956], 138.) [7]यहूदी परम्परा में, किसी दम्पत्ति की मंगनी हो जाने के बाद उन्हें विवाहित की तरह ही माना जाता था। मत्ती 1:19 में यूसुफ़ को मरियम का ''पति'' कहा गया है जबकि वह उसकी मंगेतर थी। [8]आर. सी. फोस्टर, *स्टडीज़ इन द लाइफ़ ऑफ़ क्राइस्ट* (ग्रैंड रैपिड्स, मिशिगन: बेकर बुक हाउस, 1971), 613. [9]एवरेट फर्ग्यूसन, *चर्च हिस्टरी,* अंक. 1, *फ्रॉम क्राइस्ट टू प्री-रेफरमेशन* (ग्रैंड रैपिड्स, मिशिगन: ज़ौंडरवन, 2005), 316. [10]टर्टुलियन *अगेंस्ट मार्सियन* 19.8-13.

[11]मत्ती 1:20, 24, 25 कुंवारी से जन्म की बात बताते हैं। [12]देखें प्रेरितों 12:17; 15:13; 21:18; 1 कुरिन्थियों 15:7; गलातियों 1:19; 2:9, 12; याकूब 1:1; यहूदा 1. [13]पौलुस ने कहा कि जी उठे प्रभु को देखने वालों में वह ''सबसे अंतिम'' था (1 कुरि. 15:7, 8), परन्तु जी उठे प्रभु का विशेष दर्शन याकूब को भी हुआ होगा, जिसका अर्थ यह है कि उसे यहूदियों के पास एक विशेष मिशन पर भेजा गया। [14]समानांतर विवरण मत्ती 13:57, 58 और लूका 4:23-30 में हैं। [15]रॉय बी. ज़क, द *स्पीकर'स कोट बुक: ओवर 5,000 इलस्ट्रेशंस ऐंड क्वटेशंस फ़ॉर आल ओकेशंस* (ग्रैंड रैपिड्स, मिशिगन: क्रेगल अकैडमिक ऐंड प्रोफेशनल, 2009), 189. [16]''सामर्थ'' शब्द का इस्तेमाल करने के बजाय NASB में कहा गया है कि ''वह वहां कोई आश्चर्यकर्म नहीं कर पाया।'' विश्वास की कमी का यीशु को पता था, जिस कारण उसने वहां और आश्चर्यकर्म नहीं करने चाहे, जब जो उसने किए थे, वे विश्वास दिलाने के लिए काफ़ी होने चाहिए थे। [17]विलियम हैंड्रिक्सन, *एक्सपोज़िशन ऑफ़ द गॉस्पल अकॉर्डिंग टू मरकुस,* न्यू टैस्टामैंट कॉमैंट्री (ग्रैंड रैपिड्स, मिशिगन: बेकर बुक हाउस, 1975), 220. [18]समानांतर विवरण मत्ती 9:35-10:14 और लूका 9:1-6 में हैं। [19]हैंड्रिक्सन, 225; देखें लूका 6:12, 13, 17, 20. [20]मरकुस प्रचार करने और उपदेश देने में कोई अंतर नहीं करता; बाइबल में मिलते जुलते मिशनों के सम्बन्ध 6:6 में उपदेश करने की बात है परन्तु 1:14 और 1:38 में प्रचार करने की।

[21]द *ज़ौंडरवन पिक्टोरियल बाइबल डिक्शनरी,* सम्पा. मैरिल सी. टेनी (ग्रैंड रैपिड्स, मिशिगन: ज़ौंडरवन पब्लिशिंग हाउस, 1963), 52 में स्टीवन बरबास, ''अपोस्टल।'' [22]प्रेरितों के सारे संसार में सुसमाचार को पहुंचाने के सम्बन्ध में, देखें कुलुस्सियों 1:5, 6, 23. बेशक रोमियों के लिए सारे संसार का मतलब वह इलाका था जिन पर उनका कब्जा था। [23]सुसमाचार प्रचारक के किसी इलाके में बहुत से लोगों को परिवर्तित करने पर उसे प्रोत्साहित करते रहने के लिए उसके मित्र और सहकर्मी बन जाते हैं। पौलुस को उन लोगों का, जिन्हें उसे सिखाया था समर्थन और संगति दोनों की आशीष थी; उसने अपनी शिक्षा के कारण सुसमाचार को मान लेने वालों के साथ अच्छे सम्बन्ध बना लिए थे (देखें प्रेरितों 15:36; 1 कुरि. 4:15; फिलि. 1:3-8)। [24]देखें गिनती 25:30; व्यवस्थाविवरण 19:15; मत्ती 18:16 डोनल्ड इंग्लिश ने टिप्पणी की कि दो दो करके भेजना एक यहूदी प्रथा थी (देखें मरकुस 11:1; 14:13)। (डोनल्ड इंग्लिश, द *मैसेज ऑफ़ मरकुस: द मिस्टरी ऑफ़ फेथ,* द बाइबल स्पीक्स टुडे [डाउनर्स ग्रोव, इलिनोय: इंटर-वर्सिटी प्रेस, 1992], 124.) [25]मरकुस 6:9 जहां संकेत देता है कि उन्हें जूतियां पहननी आवश्यक थीं, वहीं मत्ती 10:10 का अर्थ यह हो सकता है कि जिस प्रकार उन्होंने ''दो कुर्ते'' नहीं लेने थे वैसे ही उन्होंने अतिरिक्त जोड़े नहीं लेने थे। [26]अडोल्फ डिस्समैन ने याद दिलाया कि इस शब्द का इस्तेमाल ''भिखारी के भीख वाले थैले'' के लिए किया जाता था। (एडोल्फ डिस्समैन, *लाइट फ्रॉम द ऐंसियंट ईस्ट* [न्यू यॉर्क: हार्पर ऐंड ब्रदर्स,

एन.डी.], 109.) [27]इस सम्बन्ध में कि उन भेजे हुओं ने साथ क्या लेना था और क्या नहीं मत्ती 10 और लूका 9 की भिन्नताओं के सम्बन्ध में, ''सब को संतुष्ट करने वाला कोई समाधान नहीं दिया गया है'' (हैंड्रिक्सन, 228)। परन्तु सुसमाचार के लेखकों द्वारा इतनी छोटी छोटी बातों में अंतर दिया जाना यह दावा करने का कारण नहीं देता कि यह विवरण मरकुस का बिल्कुल नहीं था या यह कि उसने अतिरिक्त स्रोतों का इस्तेमाल किया। [28]क्रेग एस. कीनर, द *IVP बाइबल बैकग्राउंड कॉमेंट्री: न्यू टैस्टामैंट* (डाउनर्स ग्रोव, इलिनोय: इंटरवर्सिटी प्रेस, 1993), 150, 212. [29]जोसेफ़स *एंटीक्विटीज़* 17.6.5 [172]. [30]*ज़ौंडरवन ऑल-इन-वन बाइबल रैफरेंस गाइड* (ग्रैंड रैपिड्स, मिशिगन: ज़ौंडरवन, 2008), 61 में केविन ग्रीन, संकलन, ''अनायंट।''

[31]आर. ए. कोल, द *गॉस्पल अकॉर्डिंग टू सेंट मरकुस: ऐन इंट्रोडक्शन ऐंड कॉमेंट्री,* द टिंडेल न्यू टैस्टामैंट कॉमेंट्रीज़ (ग्रैंड रैपिड्स, मिशिगन: विलियम बी. एर्डमैंस पब्लिशिंग कं., 1973), 109. [32]''विश्वास की असल परीक्षा और सही समय तब आता है जब मैं गवाही की बात कहने के योग्य हो जाता हूं'' (इंग्लिश, 126)। [33]समानांतर विवरण मत्ती 14:1-5 और लूका 9:7-9 में हैं। [34]सुसमाचार के मरकुस के विवरण में यह एक कहानी है जो ''यीशु पर केन्द्रित'' नहीं है (इंग्लिश, 128)। [35]हेरोदेस अंतिपास हेरोदेस प्रथम (महान) का पुत्र था। [36]जोसेफ़स के अनुसार, हेरोदियास की महत्वाकांक्षा हेरोदेस अंतिपास की बर्बादी से पूरी हुई। अपने भाई अग्रिप्पा की शक्ति से ईर्ष्या के कारण, उसने हरोदेस को कलिगुला से राजा की उपाधि की मांग करने के लिए उकसाया। अग्रिप्पा के दांव पेचों से इसे देने से मना कर दिया गया और हेरोदेस को निकाल दिया गया। (जोसेफ़स 18.7.1-2 [240-55]।) [37]हेरोदेस अंतिपास को रोम ने चाहे कभी राजा नहीं माना, परन्तु उसके इलाके के लोग उसे राजा मानते थे; जिस कारण इस अध्याय में उसे राजा बताया गया है। ''अंतिपास'' ''अंतिपेतर'' (मूलतया, ''पिता के जैसा'') का लघु रूप है। [38]यीशु को यह बताया जाने पर कि यह हेरोदेस उसे मार डालना चाहता है उसने उसे ''उस लोमड़ी'' कहा (लूका 13:32)। यीशु ने संकेत दिया कि हेरोदेस चलाक आदमी था परन्तु हेरोदेस को अवसर मिलने से पहले दूसरे लोगों ने यीशु की हत्या कर देनी थी। [39]''एलिय्याह'' के लिए यूनानी शब्द ''Elias'' (एलियास) है। [40]यह चौथाई का हाकिम फिलिप्पुस नहीं (हेरोदेस फिलिप्पुस द्वितीय), बल्कि किसी और पत्नी से हेरोदेस महान का एक और पुत्र है। (एलन ब्लैक, *मरकुस,* द कॉलेज प्रेस NIV कॉमेंट्री [जोपलिन, मिसोरी: कॉलेज प्रेस पब्लिशिंग कं., 1995], 118.)

[41]जोसेफ़स 18.5.4 [136]। [42]वहीं, 18.5.1 [114-19]। [43]जोसेफ़स ने लिखा कि हेरोदेस यूहन्ना को मरवा डालना चाहता था क्योंकि उसे लोगों के विद्रोह का डर था। (वहीं, 18.5.2 [118]।) [44]इंग्लिश ने शर्त लगाई कि ''चाहे अधिकतर हस्तलिपियों में तो नहीं परन्तु सबसे बढ़िया पठन भय, आनन्द और अंदरूनी गड़बड़ का मिला-जुला'' विचार है। (इंग्लिश, 129.) [45]एक समानांतर विवरण मत्ती 14:6-12 में है। [46]टी. डब्ल्यू. मैन्सन ने कहा, ''... एक ही जगह जहां उसके विवाह का प्रमाण-पत्र सुरक्षित ढंग से लिखा जा सकता था वह यूहन्ना बपतिस्मा देने वाले की मृत्यु की आज्ञा के दूसरी ओर था'' (टी. डब्ल्यू. मैन्सन, द *सर्वेंट-मसायाह: ए स्टडी ऑफ़ द पब्लिक मिनिस्ट्री ऑफ़ जीज़स* [ग्रैंड रैपिड्स, मिशिगन: बेकर बुक हाउस, 1977], 40)। [47]यह स्थिति वशती की याद दिलाती है जिसने एस्तेर 1:10-12 में अपने पति राजा क्षयर्ष (जिसका यूनानी नाम अक्षरश था) की आज्ञा पर भी वासना से भरे आदमियों के सामने अपने आपको नंगा नहीं किया। [48]अल्कोहल पीना किसी न किसी बुराई का कारण बनता ही लगता है, परन्तु मतवाला हो जाना दुष्ट आचरण का कोई बहाना नहीं है। [49]''बहुत उदास'' περίλυπος (*perilupos*) का अनुवाद है, यह वही क्रिया शब्द है जिसका इस्तेमाल 14:34 में यह कहने के लिए किया गया कि यीशु ''बहुत उदास'' था। [50]समानांतर विवरण मत्ती 14:13-21; लूका 9:10-17; और यूहन्ना 6:1-13 में हैं।

[51]वैंस हैवनर, *पेप्पर 'एन साल्ट* (वेस्टवुड, न्यू जरसी: फ्लेमिंग एच. रेवेल कं., 1966), 9. [52]बार्कले, 157. [53]दीनार साधारण मज़दूर की एक दिन की मज़दूरी होता था। इसलिए दो सौ दीनार कमाने के लिए किसी को को दो सौ दिन या लगभग सात महीने काम करना पड़ना था। [54]बार्कले, 161. [55]रॉडनी एल. कूपर, *मरकुस,* हॉल्मन न्यू टैस्टामैंट कॉमेंट्री (नैशविल: ब्रॉडमैन एंड हॉल्मन पब्लिशर्स, 2000), 107. [56]वाल्टर बाउर, *ए ग्रीक-इंग्लिश लैक्सिकन ऑफ़ द न्यू टैस्टामैंट ऐंड अदर अर्ली क्रिश्चियन लिट्रेचर,* तीसरा संस्करण, संशो. व सम्पा. फ्रेड्रिक विलियम डैंकर (शिकागो: यूनिवर्सिटी ऑफ़ शिकागो प्रेस, 2000), 959. [57]द *अमेरिकन हैरिटेज डिक्शनरी,* 5वां संस्क. (2012), s.v. ''सिम्पोसियन।'' [58]बार्कले, 159. [59]वहीं। [60]समानांतर विवरण मत्ती 14:22-33 और यूहन्ना 6:16-21 में हैं।

[61]रॉबर्ट ई. स्पीयर, *द प्रिंसपल्ज़ ऑफ़ जीज़स एप्लाइड टू सम प्रिंसपल्ज़ ऑफ़ टुडे* (न्यू यॉर्क: एसोसिएशन प्रेस, 1902), 20. [62]अगस्तुस के दिनों ने, पलटन में केवल छह हज़ार पैदल सिपाही ही नहीं होते थे, परन्तु ''इसके साथ कई बार एक छोटी घुड़सवार डविज़न या *आला* (लगभग 120) लगाए जाते थे'' (जे. डी. डग्लस, सम्पा, *द न्यू बाइबल डिक्शनरी* [ग्रैंड रैपिड्स, मिशिगन: विलियम बी. एर्डमैंस पब्लिशिंग कं., 1962], 728 में जे. ए. बालचिन, ''लीजन'')। कई बार इस शब्द का इस्तेमाल केवल बड़ी संख्या बताने के लिए किया जाता था। [63]ब्लैक, 126. [64]बार्कले, 163. [65]एक समानांतर विवरण मत्ती 14:34-36 में है। [66]जोसेफ़स *वार्स* 3.10.7-8 [506-21]। [67]यह मिकायाह वाला यिम्ला का पुत्र, एलिय्याह का समकालीन नबी था। पुरान नियम में वह 1 राजाओं 22:1-28 और 2 इतिहास 18:3-27 में मिलता है, जहां उसने इस्राएली अहाब के पास राजा को यह चेतावनी देते हुए भविष्यद्वाणी की कि उसके अपने भविष्यद्वक्ता उससे धोखा कर रहे हैं। (*द इंटरनेशनल स्टैंडर्ड बाइबल इनसाइक्लोपीडिया,* संशो. संस्क, सम्पा. जियोफ़्री डब्ल्यू. ब्रोमिले [ग्रैंड रैपिड्स, मिशिगन: विलियम बी. एर्डमैंस पब्लिशिंग कं., 1986]: 3:347 में मूरडो ए. मैक्लियोड, ''मीकायाह।'')